मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज के प्रवचनों से संकलित

प्रमाणिक कहानियाँ

(भाग-2)

संकलन

बा.ब्र. रोहित भैया

(सम्प्रति संधानसागर जी महाराज,
संघस्थ आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज)

प्रकाशक

निर्ग्रंथ फाउण्डेशन, भोपाल

- कृति : प्रमाणिक कहानियाँ (भाग-2)
- प्रवचनकार : मुनि श्री 108 प्रमाणसागरजी महाराज
- संकलनकर्ता : मुनि श्री 108 संधानसागरजी महाराज
- संस्करण : प्रथम, सितम्बर 2017
- आवृत्ति : 1100
- मूल्य : सदुपयोग
- प्राप्ति स्थल : 1. श्री प्रशान्त जैन, भोपाल (म.प्र.)
  मो. 9617700813
  2. 'गुणायतन' शिखर जी, मधुवन
  फोन : 06558-232438
- प्रकाशक : निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल
- मुद्रक : विकास आफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
  45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र
  गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
  फोन : 0755-2601952, 425005624

मंगल-कामना

आज पूरा संसार भौतिकता की चकाचौंध एवं पाश्चात्य संस्कृति की मार से ग्रसित हो रहा है। इस समय हमें अपने इतिहास को दोहराने की परम आवश्यकता है। अब 'विज्ञान की नहीं हमें इतिहास' की जरूरत है। वर्तमान युग कम्प्यूटर-मोबाइल-इंटरनेट का युग है। ऐसे में हमारे धर्म ध्यान का तरीका भी परिवर्तित हो गया। इन साधनों से हमारे ज्ञान का तरीका भी परिवर्तित हो गया। इन साधनों से हमारे ज्ञान का जो विकास होना चाहिए वह नहीं हुआ अपितु अवनति की ओर चला गया।

अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा ने सब चौपट कर दिया। गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा पद्धति में हर बात को कहानी एवं उदाहरणों से समझाया जाता था। वे कहानी एवं उदाहरण आजन्म याद रहते थे एवं प्रतिपल शिक्षा देते रहते थे। आज का व्यक्ति इन्हें मात्र किस्से-कहानी के रूप में लेकर छोड़ देता है जब कि ये किस्से-कहानी बताते हैं कि आपको जीवन में **किससे और क्या हानि है**?

पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागरजी महाराज जिनकी ओजस्वी वाणी जन-जन को प्रभावित करती है। वे अपने प्रवचनों में सरल एवं सटीक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिससे उनकी वाणी को सभी समझते हैं एवं ग्रहण करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मुनिश्री द्वारा अपने प्रवचनों में जिन कहानी एवं किस्सों का उल्लेख किया जाता है। उन्हीं को संकलित कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

मेरी यह भावना है कि हम इन कहानियों के माध्यम से सार की बात समझें। पाठशालाओं में बच्चों को ये कहानियाँ अवश्य सुनायें। इससे उनमें हेय-उपादेय की क्षमता का विकास होगा। पूज्य मुनि श्री की सकारात्मक सोच

सभी जानते हैं। इन कहानियों के माध्यम से हम भी उसे अपने में विकसित करें।

ज्यादा कुछ नहीं हमें पुन: उसी भारत को लौटाना है जहाँ दादी-माँ एवं नानी-माँ कहानी-कहानी में अध्यात्म की बातें पिला देती थी। आचार्य गुरुवर एवं पूज्य मुनिश्री के पावन चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु करता हुआ यही भावना भाता हूँ कि 'प्रमाणिक कहानियाँ' के माध्यम से हम अपने शाश्वत स्वरूप को निहार सकें।

- बा.ब्र. रोहित भैया
(सम्प्रति संधानसागर जी महाराज,
संघस्थ आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज)

परम पूज्य मुनि श्री १०८ संधानसागरजी महाराज
प्रतिदिन आचार्य भगवन् की वाणी लिखते हैं।
आप चाहते हैं तो इस Link
aagamdata.blogspot.in
से प्राप्त करें ।
अधिक जानकारी के हेतु सम्पर्क करें :
वरुण जैन - ९४२४४५११७९

अनुक्रमणिका

1.	जागते रहो	9
2.	श्रद्धा से दिखते भगवान	9
3.	पुण्य-पाप का खेल	10
4.	सीखों सही-गलत की पहचान	10
5.	ऊर्ध्वमुखी चेतना : उत्थान की यात्रा	11
6.	विरक्ति पूर्ण अनुरक्ति	11
7.	ऊपर वर्क चढ़ा सोने का, अन्दर भरी बुराई	12
8.	अभिमानी सास	12
9.	प्रतिस्पर्धा करो प्रतिद्वन्दता नहीं	13
10.	टीका टिप्पणी से बचो	13
11.	पुजारी बनो, भिखारी नहीं	14
12.	लेखक या पाठक बनें प्रूफ रीडर नहीं	15
13.	नफरत को जीता प्यार से	15
14.	असंयमी से बचे संयमी	16
15.	जीभ और दाँत	16
16.	कषाय को कम मत समझो	17
17.	निमित्ताधीन दृष्टि से बचें	18
18.	सोचो साथ क्या जायेगा	19
19.	सावधानी आती भय से	20
20.	सच्ची पूजा कौन सी?	20
21.	असली आँख	21
22.	कसाई बना करुणामूर्ति	21
23.	खुद से पूछो अपना परिचय	22
24.	कठिन है विकारों को ढाँकना	23
25.	आध्यात्मिक सोच अपनायें	24
26.	सुख की रोटी	25
27.	मत इतराओ	25
28.	सहसा न विदधीत् कार्यम्	26
29.	मान का नशा	27

30.	बड़े नहीं भले आदमी बनें	28
31.	नाम के चक्कर में	28
32.	संपत्ति-विपत्ति दोनों बहनें	29
33.	पासा पलटने में देर नहीं लगती	30
34.	सोना बनो-लोहा नहीं	30
35.	सकारात्मक सोच	31
36.	महावीर का चौथा बंदर	32
37.	ईमान मत बेचो	32
38.	जीवन वीणा बनें, सिर दर्द नहीं	33
39.	जैसा नजरिया वैसा जीवन	34
40.	क्या कहता है एम.बी.ए.	34
41.	हराया आदत की गुलामी ने	35
42.	कैसे भिगोयें धार्मिक संस्कार में	36
43.	ज्ञानी एवं अज्ञानी की परिणति	36
44.	मजबूत हो श्रद्धा की ड़ोर	37
45.	निष्पाप कौन?	37
46.	उद्दायन राजा की कथा	38
47.	सुख-कहाँ	39
48.	सजा नहीं हृदय परिवर्तन करो	40
49.	फूट का कीड़ा	42
50.	वारिषेण की कथा	43
51.	गुण ग्रहण का भाव रहे	44
52.	मत उठाओ मजबूरी का फायदा	45
53.	पं. गौपालदास बरैया की ईमानदारी	46
54.	मरने से कठिन मरने का भय	46
55.	जैसा सोचोगे वैसा बन जाओगे	47
56.	मन्दिर है पॉवर पाँइन्ट	47
57.	मृत्युबोध	48
58.	जो जहाँ रहता वहाँ रमता	49
59.	आओ बने अनाथ से सनाथ	50
60.	वीतरागता की खटाई	52

61.	शरीर से आत्मा की भिन्नता	53
62.	पुरुषार्थ करो	53
63.	यह रूप तुम्हारा कितने पल का?	54
64.	तैरना सीखो	55
65.	रास्ता चलने से कटता है	56
66.	अभाव की कीमत	56
67.	खुलती नहीं आँख अलसाई	57
68.	संसार का बंधन	58
69.	प्रयोग बिना ज्ञान अधूरा	59
70.	जीवन के चार चरण	60
71.	भेदविज्ञान का प्रतीक श्रीफल	64
72.	आओ समझें कर्म-सिद्धान्त	65
73.	जोड़ने के लिए तोड़ना	66
74.	आशावादी बनिये	67
75.	जीते जी मारता है डिप्रेशन	67
76.	ईर्ष्या का फल	68
77.	प्रार्थना का प्रभाव	69
78.	बुरे का फल	70
79.	वाणी का असंयम	71
80.	वाणी वीणा बने, वाण नहीं	72
81.	बाप से बेटा सवाया	73
82.	क्या खायें और क्यों?	75
83.	भोजन लंपटता का परिणाम	75
84.	संगति का असर	76
85.	संगत कीजे साधु की	77
86.	कृतज्ञ लुटेरे	78
87.	वर्धते भयं	79
88.	बड़ा कौन?	79
89.	कौवे के घर हंसा	80
90.	जैसा करोगे वैसा पाओगे	82

91.	ले सहारा अनेकान्त का	83
92.	दृष्टिकोण-महत्वपूर्ण	84
93.	इच्छाओं का करें नियंत्रण	84
94.	अधूरे अरमान	85
95.	धर्म और धंधा	86
96.	सुचरित्र का आधार, सम्यक् संस्कार	86
97.	भोजनभट्ट का हाल	87
98.	हमें तो अपनो ने लूटा	87
99.	अतिथि सेवा सबसे बड़ी पूजा	88
100.	मूल्यांकन करो चेतन का	89
101.	कनेक्शन ठीक करें	90
102.	आती लक्ष्मी-लगती अच्छी	91
103.	स्वाध्याय का महत्त्व	92
104.	सुविधा बनेगी दुविधा	93
105.	वही दान महान्, जब दूसरा हाथ रहे अनजान	94
106.	अभिमानी की दशा	94
107.	आओं करें हृदय को प्रकाशित	95
108.	लालच बुरी बला	96
109.	चक्कर लोभ और लाभ का	98
110.	भीतर के पत्थरों को फेंको	99
111.	मेरा घर	100
112.	कोई नहीं है अपना	101
113.	कल्पवृक्ष सम जीवन	103
114.	लोमड़ी ने दी शिक्षा	104
115.	भावात्मक दृष्टि हो	105
116.	नरक बना स्वर्ग	106
117.	हर बात को भूलो मगर	109
118.	राजा हरसुख राय की निरिहता	112
119.	पाँच वर्ष का राज	113
120.	कैसे चलें लौटे में नाव	114

जागते रहो

एक आदमी एक ऐसे कक्ष में प्रविष्ट हो गया जिससे कि बाहर निकलने का केवल एक ही द्वार था। अन्दर सघन अंधेरा था और उस पर वह आदमी अन्धा भी था। बड़ी मुश्किल थी उसके साथ। वह द्वार को टटोलता-टटोलता बाहर आना चाह रहा था, लेकिन एक बड़ा विचित्र संयोग होता है कि जब कभी वह दरवाजे के समीप पहुँचता तभी उसके सिर पर खुजाल आती और उस खुजाल भरी स्थिति में वह उस दरवाजे को क्रॉस कर जाता। वह बार-बार चक्कर काट रहा है लेकिन दरवाजा उसे नहीं मिल रहा है। दीवाल को टटोल रहा है लेकिन द्वार तक पहुँच नहीं पा रहा है।

यह कहानी किसी गैर की नहीं हमारी और आपकी कहानी है। हम जिस संसार में रह रहे हैं वह किसी अन्ध कक्ष की तरह है और इस अन्ध कक्ष के द्वार से केवल वही बाहर निकल सकता है जिसकी आँखें खुली हुई हों। जिसकी आँखें बन्द हैं, जिसकी आँखें फूटी हुई हैं, वह कभी भी बाहर नहीं निकल सकता है।

श्रद्धा से दिखते भगवान

एक अंधा व्यक्ति भगवान् के दर्शन के लिये जा रहा था। मंदिर की ओर बढ़ रहा था। तभी किसी युवक ने उससे पूछा-कहाँ जा रहे हो? वह बोला- मन्दिर जा रहा हूँ। क्यों जा रहे हो? भगवान् के दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ। अरे तुम्हें दिखता तो है नहीं, मन्दिर जाकर क्या करोगे? उसने कहा- अरे भैया! मुझे नहीं दिखता तो क्या हुआ, भगवान् को तो दिखता है। वे ही मुझे देख लेंगे तो मैं निहाल हो जाऊँगा। यह है श्रद्धा की अभिव्यक्ति।

पुण्य-पाप का खेल

एक बार ऐसा हुआ कि हवा के तेज वेग से कागज का एक टुकड़ा आसमान में उड़ गया और उड़ करके पर्वत के शिखर पर पहुँचा। पर्वत ने उसका स्वागत किया और कहा-इतने ऊपर तक कैसे आ गये? कागज ने अकड़ दिखाते हुए कहा- मैं आया हूँ अपने पुरुषार्थ से। पर्वत को बड़ा आश्चर्य हुआ कि तुम और अपने पुरुषार्थ से यहाँ उड़ आये हो? कागज बोला- हाँ, तुम क्या समझते हो, मैं आसमान तक पहुँच सकता हूँ। तुम्हारी तो एक सीमा है, पर मैं अनन्त आकाश तक जाने की क्षमता रखता हूँ। मेरे पास अपार सामर्थ्य है। पर्वत कुछ जबाव दे इससे पहले हवा का दूसरा झोंका आया और वह कागज वहाँ से उड़कर नीचे गिरा और एक नाली में पड़कर सड़ने लगा।

हमारा जीवन भी बस ऐसे ही कागज की तरह है, जब पुण्य की हवा आती है तो शिखर पर चढ़ते हैं और इतराना शुरु कर देते हैं। अभिमान में फूल जाते हैं और पाप का झोंका आता है तो फिर नरक की नालियों में जाकर के सड़ने लग जाते हैं।

सीखों सही-गलत की पहचान

जैसे जोंक गाय के थन के पास चिपकी होती हैं, लेकिन दुर्भाग्य उसका कि गाय के थन के पास चिपकी रहने के बाद भी वह गाय के दूध का आस्वादन लेने की जगह खून ही पीती है। अगर उसके पास बुद्धि होती तो वह गाय का अमृतोपम दूध पी सकती थी, लेकिन वह सड़ा हुआ खून पी-पीकर अपनी जिन्दगी से हाथ धोने को मजबूर हो जाती है। सन्त कहते हैं कि यही स्थिति उस अज्ञानी प्राणी की है जो अपने आत्मानन्द का अमृतोपम दूध पीने की जगह विषयों का सड़ा-गला खून पीता रहता है। उससे ही चिपका रहता है। उस दृष्टि से अपने आपको बचाओ।

ऊर्ध्वमुखी चेतना : उत्थान की यात्रा

एक वनस्पति आती है अपामार्ग, जिसका दूसरा नाम है ओंधाकाँटा यह एक ऐसी वनस्पति होती है, जिसके काँटे ऊपर की ओर निकले हुये होते हैं। नीचे से लेकर ऊपर तक काँटे ही काँटे बने रहते हैं। अब अगर उस वनस्पति को छुयें और हाथ को ऊपर से नीचे लाये तो पूरा हाथ छिल जायेगा लेकिन अगर उसी वनस्पति को कोई नीचे से ऊपर की ओर हाथ ले जाये तो कुछ भी नहीं होगा। ये संसार के जितने भी संयोग हैं, वे किसी अपामार्ग या ओंधाकाँटे की तरह हैं, यदि ऊपर से नीचे की ओर आओगे तो तुम्हारा हाथ छिले बगैर नहीं रहेगा और नीचे से ऊपर की ओर जाओगे तो तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा। ऊर्ध्वमुखी दृष्टि के स्वामी बनिये। यही सम्यक्त्वी की पहचान होती है।

विरक्ति पूर्ण अनुरक्ति

धाय बच्चे को खिलाती है, पालती-पोसती है। धाय का काम बच्चे का लालन-पालन करना होता है। धाय के ऊपर जिस बच्चे को पालने-पोसने का दायित्व होता है उसे पूरे मन से पालती-पोसती है। अपना दूध भी पिलाती है, खिलाती है, नहलाती है, सुलाती है, धुलाती है और कई बार तो उस बच्चे को भी यह भ्रम हो जाता है कि यह ही मेरी असली माँ हैं। लेकिन इसके बाद भी वह धाय जानती है कि कौन मेरा असली बेटा है। वह जानती है कि यह बेटा मेरा बेटा नहीं है। मैं तो सिर्फ पालन-पोषण कर रही हूँ क्योंकि उसको पालना मेरा कर्त्तव्य है। पर बेटा मेरा नहीं है। यही तो अन्तर है एक ज्ञानी और अज्ञानी में। कहा भी है-

रे समदृष्टि जीवड़ा, कुटम्ब खिलावें पाल।
ऊपर से न्यारा रहे, धाय खिलाऐं बाल॥

ऊपर वर्क चढ़ा सोने का, अन्दर भरी बुराई

कोई कचरे के ढेर में सेंट उड़ेले, चाहे कितना भी सेंट उड़ेलें, कचरे से कभी सुवास नहीं आ सकती। वहाँ तो सेंट ही बर्बाद करना है। ठीक ऐसे ही देह का श्रृंगार कर आत्मसौन्दर्य को प्राप्त करने का मतलब है, कचरे में सेंट डालकर उसमें सुगन्ध उत्पन्न करने का असफल प्रयत्न करना है, जो असंभव है।

कोई व्यक्ति मल से भरे मटके को फूलों से सजाये तो हम उसे क्या कहेंगे? ऐसा मटका जिसमें मल भरा है, उस मटके को हम ढाँक सकते हैं, सजा सकते हैं, लेकिन उसके भीतर की दुर्गन्ध को रोका नहीं जा सकता है। यह मात्र ऊपर से सजा हुआ है। यदि उस मटके में हल्का-सा पंचर हो जाये और मैटेरियल बाहर आ जाये तो हमें नाक पर रूमाल रखने को मजबूर होना पड़ेगा। यह हकीकत है इसलिये शरीर का आकर्षण, शरीर की मुग्धता, केवल अज्ञानी की पहचान है।

अभिमानी सास

भीख माँगने के लिए एक घर में भिखारी आया। बहू ने कहा- यहाँ कुछ नहीं है। भिखारी लौटने लगा। सास ने सुन लिया, उसने जोर से आवाज दी- यहाँ लौट आओ। भिखारी आया इस आशा में कि यहाँ कुछ मिल जायेगा। उससे पूछा- क्या चाहते हो? उसने कहा- कुछ भीख चाहता हूँ। यहाँ कुछ नहीं है, आगे जाओ। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। भिखारी ने कहा! हे माता-कुछ देना नहीं था, तो बुलाया ही क्यों? आपकी बहू ने ही मना कर दिया था। वह बोली- बहू कौन होती है मना करने वाली, मालकिन मैं हूँ। मना करूँगी तो मैं करूँगी। घर की मालकिन मैं हूँ। यह है अभिमान।

प्रतिस्पर्धा करो प्रतिद्वन्दता नहीं

दो प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं- एक मछली की वृत्ति होती है और एक केकड़े की वृत्ति होती है। एक मछली दूसरी मछली से आगे निकल जाती है तो मछली में प्रतिस्पर्धा होती है और केकड़े में प्रतिद्वन्दता। किसी से आगे बढ़ने का भाव बुरा नहीं है, पर किसी को नीचे खींचने का प्रयत्न बहुत बुरा है। लोग आगे बढ़ना कम जानते हैं और दूसरों को पीछे खींचना ज्यादा जानते हैं। आज हमारे समाज की स्थिति मछली की तरह नहीं, केकड़े की तरह है। एक जगह तालाब के किनारे एक आदमी मछली मार रहा था। मछली मारने के लिये क्या किया? एक टोकने में केकड़े पड़े हुये थे और टोकना खुला हुआ था। केकड़े बार-बार उसमें से उछल रहे थे। वहीं से एक राजनीतिशास्त्र का प्रोफेसर अपने कुछ छात्रों के साथ गुजर रहा था। छात्रों ने कहा- कैसा मूर्ख है, तालाब के किनारे बैठा है और टोकनी खुली हुई है। केकड़े तो छलाँग लगा करके तालाब में पुनः चले जायेंगें तो इसके साथ में कुछ बचेगा ही नहीं। तब उस प्रोफेसर ने कहा- तुम नहीं जानते, ऐसा कभी नहीं होगा। छात्रों ने कहा- क्यों नहीं होगा? ये केकड़े हैं और पैदायशी राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने कहा- एक केकड़ा जब भी उछलता है तो चार केकड़ें उसकी टाँग खींच लेते हैं। टाँग खींचने की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा होती है इनमें। यह ओछी मानसिकता की निशानी हैं।

टीका टिप्पणी से बचो

एक गिलास दूध में कितनी चीनी डालते हो? एक चम्मच। रोज एक गिलास दूध में एक चम्मच चीनी डालते हो, क्योंकि दूध मीठा हो जाए इसलिए न। यदि दस चम्मच चीनी डालोगे तो क्या होगा? काम खतम। एक चम्मच चीनी डालने से दूध मीठा होता है। अगर मीठा ही होता है, तो दस चम्मच डाल दो। मैं आपसे केवल इतना ही कहता हूँ कि जरूरत पड़ने पर उतना ही कहो जितने की जरूरत है। ज्यादा टीका टिप्पणी मत करो।

पुजारी बनो, भिखारी नहीं

एक सेठ भगवान के मन्दिर में प्रतिदिन बड़े-बड़े थाल लेकर पूजा करने के लिये जाया करता था और उसी मन्दिर में एक अन्धा भी दर्शन को जाता था। उसकी आँखें न होने के बाद भी वह भगवान् की भक्ति पूरे मनोयोग से करता था। सेठ देखता था कि इसकी आँखें ही नहीं हैं, फिर यह क्या पूजा-भक्ति करेगा? मैं तो इतनी अधिक पूजा-भक्ति करता हूँ। सेठ जी को अपनी पूजा-भक्ति का बड़ा अहंकार था कि मुझसे बड़ा पुजारी इस संसार में कोई दूसरा है ही नहीं। उस अन्धे को वह सेठ बहुत साधारण-सा व्यक्ति मानता था। एक दिन सेठ को आने में कुछ विलम्ब हुआ। अन्धा सेठ से पहले पहुँच गया। सेठ यह देखकर स्तब्ध रह गया कि भगवान की प्रतिमा अन्धे से बातें कर रही है, कि तू अंधा है और रोज दर्शन को आता है, तुझे रास्ते में बहुत तकलीफ होती है, क्योंकि तेरी आँखें नहीं हैं। तू एक काम कर मेरी आँखें निकाल कर अपनी आँखों में लगा ले। तुझे दिखने लगेगा। उस अन्धे ने कहा- प्रभु, मुझे इसकी जरूरत नहीं है। आपकी दृष्टि मुझ पर पड़ती रहे। बस मैं इसी में धन्य हो रहा हूँ। मैं बिना आँख के भी आपको देख लेता हूँ। मेरा जीवन धन्य है। सेठ ने यह सब सुना। अन्धा तो वहाँ से चला गया। भगवान का आशीर्वाद मिला और उसे सब कुछ दिखने लगा। सेठ को यह बड़ा नागवार गुजरा। वह सीधे जाकर भगवान से शिकायत करने लगा कि भगवान मैं आपकी रोज इतनी बड़ी पूजा करता हूँ। आपने आज तक मुझसे बात नहीं कि और उस अन्धे को आप अपनी आँखें तक देने को तैयार हो गये। यह तो पक्षपात है। तब भगवान ने कहा- सेठ, मैं पुजारी से प्रसन्न होता हूँ, भिखारी से नहीं। तुम मेरी पूजा जरूर करते हो, पर पुजारी के रूप में नहीं, भिखारी के रूप में आते हो और तुम्हारा चित्त हमेशा याचक का होता है। वह अन्धा व्यक्ति केवल पुजारी बनकर आता है। मैंने उसे आँखें देने का भी प्रस्ताव किया तो उसने स्वीकार नहीं किया। विचार करना, तुम भिखारी बनकर भगवान के दरबार में जाते हो या पुजारी बनकर? जो भिखारी बनकर भगवान के दरबार में जाता है वह मूढ़ है और जो पुजारी बनकर जाता है वह ज्ञानी है। पुजारी बनो, भिखारी नहीं।

''लेखक या पाठक बनें प्रूफ रीडर नहीं''

आपने देखा होगा कि कुछ लोग पूरी की पूरी किताब की प्रूफ रीडिंग कर डालते हैं पर उनके पल्ले एक अक्षर भी नहीं पड़ता है, क्योंकि प्रूफ रीडिंग करने वाले किताब नहीं पढ़ते हैं, किताब की गलतियाँ ढूँढते हैं। कहाँ-कहाँ गलती हैं। उस किताब के शब्द और शब्दों के अर्थों के प्रति उनकी दृष्टि नहीं जाती है। उनका ध्यान तो केवल गलतियों पर केन्द्रित रहता है। पूरी किताब पढ़ लेने के बाद भी उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता है। उस किताब को पढ़ करके, जिसकी प्रफ्रू रीडर ने गलतियाँ निकाली हैं, लाखों लोग अपना जीवन बदल डालते हैं। जबकि प्रूफरीडर को कुछ भी नहीं मिलता। जिस किताब से प्रूफरीडर ने कुछ नहीं पाया, उसी किताब से पाठक लोग बहुत कुछ पा लेते हैं और अपने जीवन को बदल डालते हैं।

सन्त कहते हैं कि तुम भी अपने अन्दर झाँककर देखो कि कहीं तुम प्रूफरीडर तो नहीं बन गये हो। जिन्दगी की किताब के केवल प्रूफरीडर मत बनिये या तो लेखक बनिये या फिर पाठक बनिये।

नफरत को जीता प्यार से

रवीन्द्रनाथ टैगोर को जब नोबल पुरस्कार मिला तो पूरे विश्व से उनको बधाईयाँ मिलने लगी। लेकिन उनका एक पड़ोसी था, जो उनसे बहुत ईर्ष्या किया करता था। उनके मन में जलन हुई कि जरूर कोई जुगाड़-से ये पुरस्कार पाया है। रवीन्द्रनाथ को इस बात का एहसास हो गया कि इसको मुझसे तकलीफ है। रवीन्द्र जी सुबह टहलने के बाद उसके घर पर चले गये और उसके चरणों में अपना सिर रख दिया और कहा कि आपकी कृपा से मुझे यह उपलब्धि मिली है। आपका आशीर्वाद चाहता हूँ। सामने वाला एकदम पानी हो गया। उन्होंने उन्हें उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और कहा- मैं तो तुम्हारी इस उपलब्धि से जल रहा था। आज मुझे ये एहसास हो गया कि आप जैसे लोग ही नोबल पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

असंयमी से बचे संयमी

बनारस में एक मुनिराज थे। उनकी शारीरिक स्थिति बहुत गम्भीर हो गई। उन्होंने समाधि ले ली। अब समाधि तो ले ली पर किसी का सान्निध्य नहीं। दो-तीन दिन तो ठीक चला। अब आयु टिक गई। खाना-पीना छोड़ दिया था। बिना मार्गदर्शन के समाधि लेने से कई बार गड़बड़ियाँ हो जाती हैं। उनके शरीर में दाह होने लगी, पीड़ा होने लगी तो एक विद्वान वहाँ पहुँचे। बनारस तो विद्वानों की नगरी है। विद्वान ने जाकर के उन महाराज से बोला- महाराजश्री ऐसे आर्तध्यान से मरोगे तो कुगति हो जायेगी इससे तो अच्छा है कि आप ड्रिप लगवा लो ताकि धर्मध्यान पूर्वक आपका अन्त हो और उन्होंने महाराज श्री को ड्रिप लगवा दी और उसी अवस्था में महाराजश्री का अन्त हो गया। पूरे जीवन भर की साधना मिट्टी में मिला दी। क्या खोटी सलाह दी? यदि उसी समय कोई समझदार श्रावक होता तो ड्रिप तो लगाते लेकिन तन में नहीं, मन में। उनके मनोबल को जगा देते तो महाराज जी का उद्धार हो जाता। जो खुद तैरता है वह दूसरों को तैरा सकता है। जो खुद तैरना नहीं जानता है, वह खुद तो डूबता है और दूसरों को भी डूबो देता है।

जीभ और दाँत

एक बार ऐसा हुआ। जिह्वा और दाँत में कुछ बहस छिड़ गई। जीभ से दाँत ने कहा-''कैसी बेशर्म है। सारा परिश्रम मैं करता हूँ और रस तू चूसती है।''

''क्या मतलब!'' जीभ ने अपने पैनेपन को और पैना करते हुए कहा- ''सुनो मेरे सामने ज्यादा मुँह मत चलाओ, नहीं तो थोड़ी देर में सब समझ में आ जायेगा कि तुम्हारा क्या होगा।'' दाँत को गुस्सा आ गया। उसने जीभ को अपने दोनों जबड़ों के बीच में दबा दिया। जीभ तिल-मिला गई। बोली- ''ठीक है, तूने मेरा अपमान किया है, देख मैं अभी तुझे मजा चखाती हूँ।'' दाँत बोला- ''तू मेरा क्या कर लेगी?'' जीभ ने कहा- ''मैं तुझे अभी मजा चखाती हूँ।'' वो सीधे एक पहलवान के पास गई और चार, छह गालियाँ दे दीं। पहलवान को गुस्सा आ गया, उसने एक घूँसा मुँह पर दे मारा तो बत्तीसी बाहर आ गई।

कषाय को कम मत समझो

एक व्यक्ति के पैर के अँगूठे में चोट लग गई। पूरे अँगूठे में जहर फैल गया। डॉ. ने कहा भैया अब वह अँगूठा काटना पड़ेगा। मरीज ने कहा डॉ. साहब अँगूठा यदि कट जायेगा तो अच्छा नहीं रहेगा, आप तो दवाई दो और कैसे भी हो ठीक करो। डॉ. साहब ने कहा कि ठीक है कोशिश करते हैं। आठ रोज बाद मरीज डॉ. के पास गया और कहा अब तो पूरे पंजे में दर्द हो रहा है। भैया अब तो पूरे पंजे में जहर फैल गया है पूरा पंजा काटना पड़ेगा। मरीज ने कहा आप तो ऐसा करो डॉ. साहब अँगूठा काट दो। पंजा रह गया। पन्द्रह रोज बाद गया तो घुटने तक दर्द हो गया। डॉ. ने कहा भैया अब तो आधा पैर काटना पड़ेगा। मरीज ने कहा कि आप तो पंजा काट दो। पता लगा जीवन से ही हाथ धोना पड़ गया। सारे शरीर में गैंगरिंग हो गई और सब नष्ट हो गया। एक छोटा-सा फोड़ा भी उपेक्षा करने पर नासूर बनकर जान लेवा बन सकता है इसलिए फोड़े पर भरोसा मत करो। 'अग्गीथोवं' अग्नि की छोटी सी लौ को छोटा मानकर उसकी उपेक्षा मत करो। ये छोटी सी चिंगारी पूरी बस्ती को खाक में परिवर्तित करने की सामर्थ्य रखती है। क्या पता ये चिंगारी कब ज्वाला का रूप धारण कर ले इसलिये चिंगारी को चिंगारी की अवस्था में शांत करने का प्रयास करो। कहते हैं इसी तरह 'कषाय थोवं' कषाय को थोड़ी समझकर उसकी उपेक्षा मत करो। कषाय जहाँ उत्पन्न हो उसे वहीं शान्त करने का प्रयास करो।

मन की मलीनता
धर्म की तेजस्विता को
नष्ट कर देती है।

निमित्ताधीन दृष्टि से बचें

दो प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। एक कुत्ते की वृत्ति होती है और एक सिंह की वृत्ति होती है। कुत्ते और सिंह में बड़ा अन्तर होता है। कुत्ते के लिये यदि कोई पत्थर मारता है तो वह पत्थर की तरफ लपकता है और जब तक वह उस पत्थर की तरफ लपकता है उसे दो चार पत्थर और पड़ जाते हैं। लेकिन शेर के लिए यदि कोई गोली चलाये तो शेर बन्दूक की तरफ न देखकर गोली चलाने वाले की तरफ अटैक करता है और शेर जीत जाता है। बस यही अंतर है एक अज्ञानी और ज्ञानी व्यक्ति में। अज्ञानी निमित्तों के पीछे भागता है जबकि फेंकने वाला तो हमारे भीतर का कर्म है। कर्म की तरफ जिसकी दृष्टि नहीं जाती वह निमित्त की तरफ भागता है तो उस पर दो-चार पत्थर और पड़ जाते हैं और वह राग-द्वेष कर दो-चार कर्म और बाँध लेता है। लेकिन सम्यक् दृष्टि निमित्तों को कभी दोष नहीं देता है। अगर उसके सामने कोई प्रतिकूल निमित्त आता है तो वह उस निमित्त को देख विचलित होने की जगह अपने कर्म की तरफ देखता है और समता के प्रहार से उस कर्म की जड़ काट देता है।

जो दूसरों को कष्ट देना चाहता है,
स्वयं कष्ट में पड़ता है।
दियासलाई ईंधन को जलाने के लिए जलती है,
पर उसे स्वयं पहले जलना पड़ता है।

सोचो साथ क्या जायेगा

कटनी में एक बहुत धर्मात्मा सज्जन थे जयकुमारजी। उनके जीवन के साथ घटित प्रसंग है। वे अपने व्यापार के काम से पानीपत जाया करते थे। वे पानीपत में एक के घर में गये। बहुत सुन्दर हवेली बनी हुई थी। जैसे ही वे उस हवेली के पास पहुँचे तो मुख्य दरवाजे पर ही यह लिखा था कि-

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं।
सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं॥

उन्हें बड़ा अटपटा लगा। वेलकम्, स्वागतम्, अतिथिदेवो भवः ये सब चीजें तो लिखी जाती हैं। लेकिन यह उपदेश और वह भी नश्वरता का उपदेश पहले ही आखिर क्यों? उन्होंने पूछा कि भाई आखिर क्या कारण है? तो मकान मालिक ने अपनी आप बीती सुनाई जो बहुत मार्मिक है। उन्होंने कहा क्या बताऊँ? मेरे पिताजी ने बहुत लगन और निष्ठा से इस मकान को तैयार किया था। आज से बीस-पच्चीस वर्ष पुरानी बात कह रहा हूँ। उस जमाने में तीस लाख रूपये की लागत से वह हवेली बनी थी। इटालियन मार्बल लगवाया था। अरमानों से भरकर उनने वह महल बनाया था, लेकिन जिस दिन उस घर में गृहप्रवेश था उनका एक पैर दरवाजे के अंदर और एक पैर दरवाजे के बाहर रह गया, वहीं गिर पड़े और मर गये। घर में एक दिन भी ठहर नहीं सके। उनके सपनों का महल यूँ ही ढह गया। वे तो चले गये किन्तु तभी हमने समझ लिया और लिख के रखा है कि-

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं।
सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं॥

सावधानी आती भय से

कोई व्यक्ति यहाँ से चेन्नई जैसी जगह में गया है। यहाँ से ट्रेन में गया। रास्ते में उसकी अटैची भी चोरी हो गई और जेब भी कट गई। कुछ खाया भी नहीं पिया भी नहीं हार-थक गया। पता किया तो कोई परिचित आदमी था उसके घर पर पहुँचा। जैसे-तैसे पता पूँछते-पूँछते। उसको जाकर अपनी सारी परिस्थितियां बताईं। उसने कहा कि कोई बात नहीं। उसने आपका बढ़िया स्वागत किया। कहा खाओ पियो और आराम करो। मैं कमरा खोल देता हूँ। उसके लिये एक अच्छा ए.सी. रूम खोल दिया गया। अभी वह सोने के लिये जा ही रहा था कि उसके मेजबान ने कहा कि बाकी तो सब ठीक है यहाँ किसी भी चीज की कमी नहीं पर कभी-कभी यहाँ पर एक साँप दिखता है इसलिए थोड़ा सावधान रहना। मैं पूँछता हूँ कि उस आदमी को नींद आयेगी क्या? अगर झपकी भी आई तो उसमें भी उसको साँप दिखेगा। क्यों? क्योंकि भय है। जहाँ भय है वहां जाग्रति है, जहाँ भय है वहां सावधानी है।

सच्ची पूजा कौन सी?

एक आदमी था हनुमान जी का परम भक्त। रोज सुबह से बन्दरों को रोटियाँ खिलाता था। अपने हाथ में बहुत सारी रोटियां लेकर जा रहा था। एक भिखारी रस्ते में मिल गया उसने सेठजी से निवेदन किया कि कुछ कृपा करो, मैं तीन दिन से भूखा हूँ प्राण निकले जा रहे हैं। दो रोटी दे दो बड़ी कृपा होगी। सेठ जी ने मुँह फुलाकर कहा चला जा पता नहीं कहाँ से सुबह-सुबह आ गया है। भिखारी ने कहा सेठजी दो रोटियाँ दे दो बड़ी कृपा होगी। सेठ जी ने कहा कि अभी फुर्सत नहीं है। सेठ जी उसकी बात को अनसुना करके आगे बढ़ गये। नियत स्थान पर पहुँचे बंदरों का झुण्ड लगा था। सेठजी ने रोटियाँ खिलाई और जब लौटे तो देखते हैं कि वह भिखारी वहां अचेत पड़ा था। इसके तो सच में प्राण निकल गये। ऐसी पूजा किस काम की जो किसी भूखे को रोटी न खिला सके, ऐसी पूजा किस काम की जो किसी प्यासे को पानी न पिला सके?

असली आँख

एक सेठ था बड़ा ही कंजूस था, एक दिन एक भिखारी उसके यहाँ पहुँच गया। बोला सेठजी कुछ दे दो। अब नया-नया भिखारी था। बाकी भिखारी जानते थे कि इसके यहाँ से कुछ मिलता तो है नहीं। पर वो नहीं जानता था इसलिये पहुँच गया। सेठ ने उसे टालना चाहा। भिखारी ने कहा कि सेठजी दो दिन का भूखा हूँ कुछ दे दो। सेठजी ने कहा यहां कुछ नहीं है चलो, सुबह-सुबह से आ जाते हो तो भिखारी ने कहा कि सेठजी कुछ तो दे दो, दो दिन से भूखा हूँ। बहुत गिड़गिड़ाने लगा भिखारी, जाने का नाम ही न ले। तब सेठजी ने कहा कि मेरी दो आँखें हैं एक आँख असली है और एक आँख नकली है। तुम यह बता दो कि कौन सी असली है। भिखारी ने दोनों आँखों को गौर से देखा और कहा कि सेठ साहब आपकी बाई आँख पत्थर की है। हकीकत में उस सेठ की बाई आँख पत्थर की थी। सेठ ने कहा तुमने बिल्कुल सही बताया कि मेरी बाई आँख पत्थर की है, पर यह तो बताओ कि तुमने जाना कैसे कि मेरी बाई आँख पत्थर की है, भिखारी ने कहा कि सेठ जी उसी में थोड़ा-थोड़ा पानी दिख रहा था। कंजूस आदमी की असली आँख में पानी नहीं आ सकता है नकली आँख में ही पानी आ सकता है। सत्य है जिसकी आँखों में पराई पीड़ा को देखकर नीर न बहे उस व्यक्ति को बहुत कठोर समझना चाहिये।

कसाई बना करुणामूर्ति

बम्बई में एक कसाई का बेटा था जिसका बाप स्लॉटर हाउस चलाता था। उस कसाई का हृदय परिवर्तन हुआ। बेटे ने अपने स्लॉटरिंग के व्यवसाय को बन्द करके कपड़े का व्यवसाय शुरू किया और कपड़े की एक बड़ी दुकान खोली। इतना ही नहीं वह गायों की रक्षा में भी लग गया और दस हजार गायों की उस समय तक उसने रक्षा कर ली थी। इसके लिये उसे अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं का सामना भी करना पड़ा। कसाईयों ने उसके विरुद्ध फतवा सा जारी कर दिया, लेकिन फिर भी वह अपने ध्येय से नहीं पलटा। ये है करुणा। कसाई के हृदय में भी यदि संवेदना जाग जाये तो वह करुणा मूर्ति बन सकता है।

खुद से पूछो अपना परिचय

एक बार एक युवक किसी पहुँचे हुये साधक के पास गया और पूँछा कि मैं कौन हूँ? सन्त ने उसकी बात का उत्तर देने की बजाय उसके गाल पर जोरदार तमाचा लगाया और कहा चले जाओ मूर्ख यहाँ मेरे पास आये हो पूँछने के लिये। उसे बड़ा अटपटा लगा। वह सोचकर आया था कि बहुत बड़े साधक हैं। मेरी जिज्ञासा का समाधान करेंगे और इन्होंने तो मुझे तमाचा लगा दिया। वो एक-दूसरे साधक जो इन्हीं साधक के शिष्य थे उनके पास पहुँचा और कहा कि मैं तो आया था ये सोचकर कि ये तो मुझे स्वरूप का बोध करायेंगे पर इन्होंने तो उल्टा मुझे तमाचा मार दिया। बोले अच्छा हुआ कि उन्होंने तुम्हें तमाचा मार दिया। अगर यही प्रश्न मुझसे पूँछते तो मैं तुम्हें डंडा मारता। वो फिर से उन्हीं साधक के पास पहुँचा और पहुँच कर बोला क्या बात है? मैं तो आपके पास अपनी जिज्ञासा लेकर आया था और आपने मुझे तमाचा मार दिया। तो साधू ने कहा कि तमाचा नहीं मैंने तो आपको जवाब दिया है। उसने कहा कि जवाब देने का ये कौन सा तरीका है? साधु ने कहा कि देखो अब दोबारा मत पूछो अभी तो मैंने तुम्हें तमाचा ही मारा है अब कुछ और भी कर सकता हूँ। उस युवक ने कहा कि गुरुदेव आखिर बताओ तो कि मैं हूँ कौन? और आपने ऐसा क्यों किया? उन्होंने कहा कि तुम महामूर्ख हो! अरे जो प्रश्न तुम्हें खुद से पूछना चाहिये वो तुम मुझसे पूँछ रहे हो? चले आओ यहाँ से। सच है, आत्मा के अस्तित्व को छानने के लिये बाहर भटकने की जरूरत नहीं है। वो तो जहां है सो है। उसे वहीं झाँको वहीं पहचानो।

पत्नि पसंद की जा सकती है,
पर माँ तो जो मिलती है
उसे ही पसंद करना पड़ता है।

कठिन है विकारों को ढाँकना

एक ऋषि हुए हैं पाराशर। बहुत माने हुए ऋषि थे। वे नदी के तट पर पहुँचे तो देखा कि एक सुंदर युवती नौका लिये बैठी है। वह सुन्दरी अनिंद्य सुन्दरी थी, अद्‌भुत रूप था। पाराशर उसके रूप से आकर्षित हुए और उससे उसका नाम पूछा। उसने कहा- मेरा नाम मत्स्यगंधा है। पाराशर ने कहा- मुझे उस पार जाना है, क्या तुम उस पार लगा दोगी? मत्स्यगंधा ने कहा- यह तो मेरा काम ही है। मैं जरूर पार लगा दूंगी। पाराशर नाव में सवार हो गये। मत्स्यगंधा नाव को खेती-खेती बीच नदी में पहुँची। तब तक मत्स्यगंधा के रूप को देखकर पाराशर का मन डोल गया। पाराशर ने युवती से कहा- तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हारा सामीप्य चाहता हूँ। पाराशर के ये वचन सुन वह एकदम से सकपका गयी। उसने कहा- यह क्या कहते हो? यह काम एकदम अनुचित है। कोई देख लेगा तो? पाराशर ने कहा- इस बीच नदी में कौन देखेगा, आओ, तुम मेरे पास आओ। और वह एकदम आपा खो बैठे। वह उठकर मत्स्यगंधा के नजदीक जाने लगे। मत्स्यगंधा ने अपने आपको सम्हाला और कहा-आप कहते हैं कि कोई नहीं देखेगा, पर कोई देखे या न देखे यह सूरज तो देख ही रहा है। दुनिया क्या कहेगी। पाराशर ने कहा- तुमने कभी पहचाना नहीं, तुम्हारी नाव में कौन बैठा है? उसकी ताकत और तपस्या से तुम अनभिज्ञ हो। तुमने उसकी शक्ति को नहीं पहचाना। ठहरो, मैं इस सूरज को सामने से दूर कर देता हूँ और पाराशर ने मन्त्र फूँका तो तुरन्त ही बादल छा गये और सूरज बादलों की ओट में आ गया। अब अभिमान से भर कर पाराशर ने कहा-देख ली ना तुमने मेरी शक्ति। मैं सूरज को भी प्रतिहत कर सकता हूँ। सूरज को भी ढाँकने की क्षमता मुझमें है। अब की बार मत्स्यगंधा की बारी थी, उसने पाराशर के मन को झकझरोते हुए कहा- पाराशर, आपमें इतनी अधिक शक्ति है कि सूर्य के प्रभाव को भी प्रतिहत करने की क्षमता आ गयी, पर आप अपने विकारों को नहीं जीत सकें, धिक्कार है तुम्हें।

सूरज को ढाँक लेना फिर भी सरल है, पर विकारों को ढाँकना बहुत कठिन है। हमारी पहल भीतर की शुद्धीकरण की ओर होनी चाहिए। जब तक हम भीतर से नहीं सँवरते, तब तक हम सुखी नहीं बन सकते।

आध्यात्मिक सोच अपनायें

एक जगह एक युवती का स्वर्गवास हो गया। अप्सरा-सम वह युवती असमय में कालकवलित हो गयी। उसकी लाश को देखता हुआ एक दीवाना निकाला तो उसने सोचा कि काश! यह जिंदा होती तो मैं अपने मन की कामना पूरी कर पाता। उसने शव देखा और उसके मन में विकार आया और वह विकार से प्रेरित हो गया। दूसरी ओर, एक नृत्यांगना निकली। उसने उसे देखा- आह! अद्‌भुत रूप, यदि आज यह जिंदा होती तो अपने हाव-भाव, विलास से सारी दुनिया को मुग्ध कर देती। दुनिया की एक श्रेष्ठ नृत्यांगना कहला सकती थी।

एक वेश्या भी निकली और उसकी दृष्टि भी उस पर पड़ी। उसने कहा- हाय! यह असमय में मर गई। यदि इस जैसी रूपवान् स्त्री मेरे पास होती तो मेरा धन्धा दिन दूना रात चौगुना होता।

इसी बीच एक संत का भी गुजरना हुआ, उनकी भी दृष्टि उस पर पड़ी। उसके रूप और यौवन को देखकर उन्होंने सोचा- भरी जवानी में यह मर गयी। काश, इसने अपने जीवन में संयम को अपनाया होता तो अपने जीवन का कायाकल्प कर लिया होता।

घटना एक है, नतीजे अलग-अलग। वस्तुतः नतीजे तो हमारे नजरिये पर निर्भर करते हैं कि हम किस घटना को किस रूप में देखते हैं, सब कुछ उस पर निर्भर करता है इसलिये अपनी सोच को बदलने की कोशिश कीजिए।

दुनिया को धोखा दिया जा सकता है,
पर स्वयं को नहीं।

सुख की रोटी

सम्राट् सिकंदर विश्वविजय के अभियान में बढ़ा जा रहा था। रास्ते में उसकी किसी संत से मुलाकात हो गयी। संत ने पूछा- तुम कहाँ जा रहे हो? वह बोला- मैं हिन्दुस्तान को जीतने जा रहा हूँ। हिन्दुस्तान को जीत कर क्या करोगे? पड़ोसी देशों को जीतूँगा। पड़ोसी देशों को जीतकर क्या करोगे? सुख की रोटी खाऊँगा। संत जोर से हँस दिये और कहा- सिकंदर तुम्हें सुख की रोटी ही खानी है तो क्या अभी रोटियों की कमी है? जो दूसरों की रोटियाँ छीनने के लिये निकल पड़े हो?

तुम कितना भी क्यों न जोड़ लो, बाहर की सम्पत्ति में सुख का निवास नहीं है। सुख का निवास हमारे अन्तस् की संवेदना पर होता है।

मत इतराओ

जलधर नया-नया आया और पवन के सहारे ऊँचे आसमान पर चढ़ गया। पर उसे बाहरी जगत का अनुभव नहीं था। दूसरों के सहारे ऊँचा उठना भय से खाली नहीं। इसे वह नहीं जानता था। पवन ने अपना हाथ खींचा और जलधर नीचे आ गया। आसमान में बादल तभी तक टिकता है जब तक कि पवन का साथ रहता है। जिस दिन वायु अपना हाथ खींच लेगी बादल धराशायी हो जायेंगे। ये हकीकत है हमारा जीवन कागज के टुकड़े की तरह है। पुण्य की अनुकूल वायु के कारण हम पर्वत पर पहुँच जाते हैं और पाप के झोंके के आते ही नरक-निगोद की नालियों में पहुँच जाते हैं।

सहसा न विदधीत् कार्यम्

पति अपनी पत्नि को छोड़कर विदेश गया। पन्द्रह वर्ष तक उसने धन कमाया। उसके बाद उसे घर की याद आयी। सोचा अब घर चला जाय, बिना सूचना के। वह अपनी पत्नि को सरप्राइज देना चाहता था। वह अचानक घर आ गया। रात्रि में जब वह घर पहुँचा तो देखता क्या है कि उसकी पत्नि सोलह वर्ष के युवक के साथ लेटी हुई है। पति के मन में आग लग गयी। मैं तो इसको लिये इतना धन कमाता था और यह है कि इस स्थिति में है। उसके अन्दर क्रोध उमड़ पड़ा। उसने तलवार खींच ली। अभी मैं दोनों की गर्दनों को धड़ से अलग करता हूँ। अचानक ही शयनकक्ष में अपने द्वारा लगायी गयी पट्टिका पर नजर गयी। जिसमें लिखा था- **सहसा न विदधीत् कार्यम्।** कोई भी कार्य जल्दबाजी में न करें। वह रुक गया। उसे सहसा एक संदेश मिल गया। उसनेअपनी तलवार को अपनी म्यान में रखा। उसने पत्नि को जगाया। पत्नि ने जैसे ही पति को देखा, उसने अपने

बगल में लेटे हुए युवक को जगाते हुए कहा- देख, तेरे पिताजी आ गये, इनका चरणस्पर्श कर।

पति हक्काबक्का रह गया। पति बोला- यह कौन? पत्नि ने कहा- आप भूल गये क्या? यह वही एक साल का बेटा है, जिसे आप मेरे पास छोड़ गये थे। वही मेरे पास लेटा था।

यदि थोड़ी हड़बड़ी हो जाती, जल्दबाजी हो जाती तो अपनी पत्नि को भी खो देता और बेटे को भी।

गुनगुनाते हुए जीओ,
भुनभुनाते हुए नहीं।

मान का नशा

हमारे यहाँ 10-11वीं शताब्दी में एक महान् आचार्य सकलकीर्ति हुए हैं। वे राजा के राज्य में रहा करते थे। कई ग्रन्थों की रचना उन्होंने की। उस समय सोमप्रभ नामक एक श्रेष्ठी रहा करता था। उसके पास पैसा तो बहुत था पर था वह कंजूस। उसका इकलौता बेटा था। वह मर गया। पुत्र की मृत्यु के बाद उसे बड़ा शोक हुआ और वह शान्ति का उपदेश पाने के लिए सकलकीर्ति आचार्य के सम्पर्क में पहुँचा। महाराज ने उसकी बात सुनी, उसे सम्बोधा-तुम्हारे पास धन-वैभव है, उसे छोड़कर जाओगे। इससे पहले कि तुम संसार से जाओ जनकल्याण में उसे लगाना शुरू कर दो। उसे महाराज की बात समझ में आ गई और अपना धन लुटाना शुरू कर दिया। उसकी ख्याति बहुत फैल गई। राजा भोज एक वर्ष में जो दान करता था उतना दान उस श्रेष्ठी ने एक सप्ताह में कर दिया। वह सब जगह चर्चित हो गया। उसकी तुलना महाराज कर्ण से होने लगी। जब लोक में उसकी प्रशंसा होने लगी तो वह फूल गया, अपने आपको बहुत बड़ा दानी मानने लगा। उसके अन्दर मान भर गया। एक बार जब वह आचार्य महाराज के पास गया और उसने महाराज से कहा- मेरे पास सब कुछ तो है पर शान्ति नहीं है। महाराज ने कहा- तुम अभी नशे में हो मैं तुमसे बाद में बात करूँगा। जाओ रातभर वृक्ष के नीचे बैठो। वह अवाक् रह गया। दुनिया मुझे इतना सम्मान दे रही है, दानी कह रही है, मेरी प्रशंसा हो रही है। लेकिन महाराज मुझे नशे में कह रहे हैं। लेकिन वह श्रद्धालु था। वह वृक्ष के नीचे बैठा तो उसे समझ में आने लगा। उसका होश ठिकाने आने लगा। वह समझ गया कि नशा शराब का ही नहीं होता, मान का भी नशा होता है। अगर मैं इस नशे के प्रभाव में रहूँगा, तो मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। उसे वास्तविकता का बोध हुआ। उसे अपने जीवन की दुर्बलता का बोध हुआ। जब तक मैं मान के हाथी पर सवार था तब तक मैं ही बड़ा दिखता था और कोई भी बड़ा नहीं दिखता था। तब मेरी आँखे मुझसे बड़े को दिखाने या देखने ही नहीं देती थीं। मेरे कान किसी अन्य की प्रशंसा सुनने ही नहीं देते थे।

अभिमानी व्यक्ति को न कुछ सूझता है और न वह किसी की सुनता है।

बड़े नहीं भले आदमी बनें

एक बार ऐसा हुआ कि एक बड़ा आदमी भले आदमी के घर गया। भला आदमी अपने आफिस में बैठा हुआ था, उसके आने पर उसने सत्कार किया और सामने की कुर्सी पर बैठने को इशारा किया। बड़े आदमी को संकोच लगा, शान के खिलाफ लगा। भले आदमी ने बड़े आदमी से कहा- मैंने आपके मनोभावों को ताड़ किया है भाई साहब। आप बहुत बड़े आदमी हैं, आपके लिए और दो कुर्सी लगवा देता हूँ, कृपा कर बैठ जायें। कृपा! मेरे सिर पर बैठने की कोशिश न कीजिए। याद रखना बड़ा आदमी दूसरे के सिर पर बैठने की कोशिश करता है, और भले आदमी को दुनिया सिर पर बैठाती हैं। दुनिया में जितने भी बड़े आदमी हुए हैं, वे सभी विलीन हो गये। दुनिया में उनका नाम नहीं रहा जबकि जो भले आदमी हुए वे सबके गले के हार बन चुके हैं।

नाम के चक्कर में

जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये जाता है, तो ऋषभाचल पर्वत के निकट पहुँचने पर सोचता है कि चलो... अपनी प्रशस्ति लिख लूं। वहाँ जाकर देखता है कि सौ योजन का पूरा पहाड़ पूर्व चक्रवर्तियों के नाम से खुदा है। उसे कहीं जगह नहीं मिली। तब सोचा, किसी का नाम मिटाकर अपनी प्रशस्ति लिख दूँ। जैसे ही किसी का नाम मिटा कर प्रशस्ति लिखने का सोचा तैसे ही एक दूसरा विचार आ गया, अरे, मैं किसका नाम मिटाकर अपना नाम लिखूँ? आज मैं दूसरे के नाम को मिटाकर अपना नाम अंकित करूँगा, कल कोई दूसरा आयेगा जो मेरा नाम मिटाकर अपना नाम अंकित कर जायेगा। संसार में हरेक का नाम मिटने वाला है, किसी का नाम अमिट नहीं है। इस वास्तविकता को जो जानता है, वह व्यर्थ की चाह नहीं रखता।

संपत्ति-विपत्ति दोनों बहनें

राजा भोज के दरबार में एक दरिद्र व्यक्ति पहुँचा। द्वारपालों ने उसे रोका। उसने कहा- जाओ, राजा से कहो कि आपका कोई भाई आपसे मिलना चाहता है। द्वारपालों ने उसकी शक्त देखी तो बड़ा आश्चर्य हुआ। फटे हाल है और कह रहा है मैं राजा भोज का भाई हूँ। पता नहीं ये कैसे राजा भोज के भाई हो गये?

द्वारपाल राजा भोज के पास गया और कहा- बाहर कोई दरिद्र नारायण खड़े हैं, वे अपने आपको आपका भाई बताते हैं, क्या उनको प्रवेश की अनुमति है? राजा को भी आश्चर्य हुआ, ऐसा कौन-सा भाई है! चलो, बुलाओ उसे दरबार में। उसके फटे हाल को देखकर राजा भोज को भी आश्चर्य हुआ। राजा ने पूछा-भाई, यह तो बताओ कि तुम मेरे भाई कैसे हो? उस दरिद्र ने कहा- राजन्! सुन लो।

सम्पदा तव मातासि आपदा मम मातासि।
आपत्सम्पत्तौ भगिन्यौ स्यात् तस्मादहं भ्रातास्मि॥

उसने कहा- राजन्! आपदा मेरी माता है और आपकी माता सम्पदा है, दोनों बहिनें हैं। इसलिये हम दोनों मौसरे भाई हैं।

बात यथार्थ है। अनुकूलता हो या प्रतिकूलता, आपत्ति हो या सम्पत्ति, ये दोनों कर्म की परिणति हैं, इसलियेये दोनों भाई-भाई हैं। इसलिये आप आपत्ति में भी प्रसन्न रहिये और सम्पत्ति में भी प्रसन्न रहिये।

खाली दिमाग से नहीं,
खुले दिमाग से सोचो।

पासा पलटने में देर नहीं लगती

एक व्यक्ति चला जा रहा था कि उसके पैर की ठोकर से एक पत्थर उचट कर गुलाब के पौधे के पास जा गिरा। गुलाब के पौधे ने जैसे ही उस पत्थर को देखा तो उपहास मिश्रित वचनों से कहा- यह भी कोई जिंदगी है, केवल ठोकर! पत्थर ने गुलाब की इस व्यंगोक्ति को सुना तो मन मसोसकर रह गया। करता क्या? उसके नसीब में ठोकर ही लिखी थी। लेकिन कहते हैं कि कभी-कभी घूरे के दिन भी फिर जाते हैं।

थोड़ी ही देर में एक दूसरा राहगीर उधर से गुजरा। उसकी दृष्टि उस पत्थर पर पड़ी। उसने पहली ही नजर में पत्थर के भीतरी और बाहिरी स्वरूप को समझ लिया। उसने उसे उठा लिया, उलट-पलट कर देखा और अपने घर ले आया। उसे सुन्दर आकार देना शुरू कर दिया। अपनी छैनी-हथोड़ी से उसे तराशा।तराशते-तराशते उसका विकार निकला और वह एक सुन्दर प्रतिमा का आकार बन गया। उसने उस प्रतिमा को अपने घर के पूजाघर में विराजमान किया। और अगले दिन उसने उसकी पूजा के लिये जो फूल चढ़ाया, वह वही फूल था जो उपहास कर रहा था। प्रतिमा ने उस फूल को देखा तो कहा कुछ नहीं, मुस्कुराकर रह गया। फूल स्वयं में शर्मिंदगी महसूस कर रहा था। यही जीवन की वास्तविकता है।

सोना बनो-लोहा नहीं

दो प्रकार की परिणति होती हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा- जैसे सोना कीचड़ में गिरता है तो भी वह कीचड़ से अलिप्त रहता है। यदि उसे धो लें तो वह वापिस ज्यों का त्यों हो जाता है। हकीकत में सोना कीचड़ को पकड़ता ही नहीं। यदि दूसरी तरफ लोहे को कीचड़ में डाला जाये तो वह जंग खा जाता है। यही स्थिति एक ज्ञानी और अज्ञानी की है। ज्ञानी कर्म के मध्य रह कर भी उससे अलिप्त रहता है। उसका जीवन सोने की तरह होता है। वह संसार की कीचड़ में गिरने के बाद भी सोने-सा चमकता रहता है।

सकारात्मक सोच

एक व्यक्ति ने अपने लिए मकान बनाया। उस मकान में हफ्ते भर बाद वह प्रवेश करने वाला था। किन्तु दुर्भाग्यवश आज ही मकान में आग लग गयी। पूरा का पूरा मकान धू-धूकर जल गया, राख में परिवर्तित हो गया। जिसने भी सुना उसे बड़ा दुःख हुआ। इतना सुन्दर मकान, हफ्ते भर बाद उसे प्रवेश करना था आज खाक में परिवर्तित हो गया। उसके मित्रों एवं शुभचिन्तकों ने उसे सान्त्वना देना चाही। उन्होंने कहा- तुम्हारे जीवन में बहुत बड़ी आपत्ति आ गयी। कोई क्या कर सकता है। आप धैर्य रखें, हम लोग आपके साथ हैं।

उस व्यक्ति की सोच बहुत सराहनीय थी, उसने कहा- नहीं, मैं तो भगवान को बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूँ कि आज से ठीक एक सप्ताह बाद मैं उस मकान में प्रवेश करने वाला था। अच्छा हुआ मकान में आज ही आग लग गयी। यदि यह आग एक सप्ताह के बाद लगी होती तो मेरा परिवार भी मकान के साथ राख हो गया होता। मकान तो पुनः बना लिया जायेगा, लेकिन परिवार तो दुबारा पैदा नहीं हो सकता। मैं भगवान् का शुक्रगुजार हूँ कि उसने मकान को जलाया भी तो पहले जला दिया, मैं तो सुरक्षित हूँ। यह एक सकारात्मक दृष्टिकोण है।

माँ-बाप को बेटी की विदाई का
उतना दुःख नहीं होता,
जितना बेटे की बेवफाई का।

महावीर का चौथा बंदर

गांधी जी ने कहा था बुरा मत देखो, बुरा मत बोलो और बुरा मत सुनो। उन्होंने तीन बन्दर की बात की। हमेशा वो तीन बंदर रखते थे। एक मुंह पर हाथ रखे, एक कान पर उंगली रखे, एक आँखों पर हथेली रखे। ये गांधी जी का सिद्धांत था। जीवन को अच्छा बनाने के लिये ये जरूरी है हम बुरा न बोलें, बुरा न सुनें, बुरा न देखें, लेकिन भगवान महावीर से जब हम बात करें तो भगवान महावीर कहते हैं कि तीन की जरूरत नहीं है एक ही पर्याप्त है हमें चौथे बंदर को तैयार करने की जरूरत है जिसके माथे पर ऐसा हाथ हो और वो कहे भाई बुरा मत सोचो। जो बुरा नहीं सोचेगा, वो बुरा सुनेगा भी नहीं, बुरा देखेगा भी नहीं और बुरा बोलेगा भी नहीं, बस बुरा मत सोचो। अपनी सोच के स्तर को सुधारो।

ईमान मत बेचो

एक परिवार प्रदर्शनी देखने के लिये गया। परिवार के सदस्यों के अनुसार सबकी टिकिट ली गयी। एक छोटा बच्चा भी था। उन्होंने उसकी भी आधी टिकिट ले ली। पूँछा गया कि आपने इसकी टिकिट क्यों ले ली? ये बहुत छोटा-सा बच्चा है, दो -ढाई साल का ही होगा ना! क्या फर्क पड़ता यदि टिकिट नहीं लेते तो, किसी को कोई मालूम ही नहीं पड़ता कि इस बच्चे की टिकिट है कि नहीं। बिना टिकिट के ही काम चल जाता। उस व्यक्ति ने जो जबाव दिया वह ध्यान देने योग्य है।

उसने कहा- बिलकुल ठीक कह रहे हो, मैं अपने बच्चे की उम्र ढाई साल भी बता सकता था। और किसी को पता नहीं चलता। पर मेरे बेटे को तो पता चल जाता। मैं दो रूपये के पीछे अपना ईमान नहीं बेचना चाहता।

जीवन वीणा बनें, सिर दर्द नहीं

दीपावली का समय नजदीक था, एक व्यक्ति अपने घर की सफाई में लगा हुआ था। अचानक उसकी दृष्टि एक ऐसी वस्तु पर पड़ी, जिसके विषय में वह कुछ खास नहीं जानता था। उसे कुल इतना ही पता था कि उसके पिता कहा करते थे कि बेटे यह बड़े काम की चीज है, इसे सम्भाल कर रखना और जब भी उसने अपने पिता से पूछा कि यह किस काम की चीज है तो उसके पिता उससे यही बोलते थे कि मुझको नहीं पता पर मेरे पिता कहा करते थे कि यह बड़े काम की चीज है, इसे सम्भाल कर रखना। वर्षों से वह चीज उसके घर में पड़ी हुई थी लेकिन आज उसका मन परम्परा के प्रति बगावत के भाव से भर उठा और उसने सोचा कि पता नहीं क्यों पुराने लोग व्यर्थ में अपना बहुत सारा समय औ शक्ति ऐसी चीज के लिये बर्बाद करते हैं जो लंबा चौड़ा स्थान घेरती है, इसका क्या उपयोग? और इसी मनोभाव से प्रेरित होकर उसने उसे उठाया और कचरे के ढेर में फेंक दिया। थोड़ी देर बाद किसी राहगीर की दृष्टि उस वस्तु पर पड़ी, वह उसके नजदीक पहुंचा और उसे उठाया, उसे उलट-पुलट कर देखा तो वह एक वीणा थी, जिसके तार टूटे हुये थे। उसने तार से तार मिलाये और अपनी उंगलियों का स्पंदन जब उसमें दिया तो उसमें से मधुर संगीत प्रस्फुटित हो उठा, वह हर्ष से झूम उठा। कि हमारा जीवन भी इसी वीणा की भांति है, पर वीणा का लाभ और वीणा का उपयोग केवल वही कर सकते हैं जो वीणा को पहचानते हैं। **जो अपनी जीवन वीणा को पहचान लेते हैं, उनका जीवन संगीत है और जो इसे नहीं जानते, उनका जीवन सिर दर्द है।**

तृप्ति अक्षय कोष में नहीं,
अक्षय तोष में है।

जैसा नजरिया वैसा जीवन

एक पिता अपने बेटे को जीवन की वास्तविकता का पाठ पढ़ाने के ख्याल से एक गांव में ले गया। एक किसान के घर एक दिन और रात रहा। लौटकर आने के बाद पिता ने अपने बेटे से पूछा, तुमने देखा, ये लोग कितने गरीब हैं। गरीबी को तुमने ठीक ढंग से समझा, गरीबी और अमीरी के अंतर को तुमने समझ लिया? बोला हाँ पिताजी, मैंने समझ लिया। क्या? बोला मैंने देखा कि हमारे पास एक कुत्ता है उसके पास 4 कुत्ते हैं। हमारे घर में एक छोटा सा स्वीमिंग पूल है और उनके लिए नहाने को एक लंबी नदी। हमारे घर के बाहर इम्पोर्टेड लैम्प लगे हैं, उनके लिए आसमान के सितारे। अब इतना ही अमीरी-गरीबी का अंतर है और क्या अंतर हो सकता है। पिता ने बेटे की सकारात्मकता को देखा और छाती से लगा लिया और बोले बस, यदि तुम अपने जीवन को सुख से भरना चाहते हो, तो हर चीज को इसी नज़रिये से देखने की कोशिश करो। तुम्हारा नज़रिया जैसा होगा, जीवन वैसा ही होगा।

क्या कहता है एम.बी.ए.

एक कपंनी में दो व्यक्तियों की नियुक्ति करनी थी। एम.बी.ए. पास दो युवक आये। दोनों का इण्टरव्यू लिया गया। पहले से पूछा गया कि एम.बी.ए. का फुल फार्म क्या है? उसने कहा मुझे बिगाड़ना आता है। एम.बी.ए.- मुझे बिगाड़ना आता है। वह बाहर गया। दूसरे से पूछा गया कि एम.बी.ए. का फुल फार्म क्या है? उसने कहा मुझे बनाना आता है। मैं आपसे पूँछना चाहता हूँ कि आप कौन से एम.बी.ए. को पसंद करोगे? बिगाड़ने वाले को या बनाने वाले को? आप सच्चे अर्थों में मैनेजमेंट में माहिर होना चाहते हो तो बनाना सीखिए, बिगाड़ना नहीं, ये जीवन का सबसे बड़ा सोच है। बनाने की सोचिए, बिगाड़ने की नहीं। बसाने की सोचिए, उजाड़ने की नहीं। अगर जीवन में नया वातावरण बनाना है तो मिलाने की सोचिए, ठुकराने की नहीं।

हराया आदत की गुलामी ने

हरी प्रसाद गौर, जिनके नाम से मध्यप्रदेश के सागर शहर में विश्वविद्यालय बना। ये अपने जीवन में एक भी मुकदमा नहीं हारे।

उनका जीतने का ही रिकार्ड रहा। एक केस ऐसा था जिसमें प्रतिपक्षी वकील बहुत बड़े तर्क दे रहा था और ऐसा लग रहा था कि ये केस हार रहे हैं। इन्होंने देखा कि उनके विरोधी वकील की प्रखरता का कारण क्या है? उन्होंने बारीकी से देखा कि जब भी कोई खास प्वाइण्ट सामने रखना होता था तो वह वकील अपने कोट के बटन को घुमाता था। एक ही बटन को घुमाता और जैसे ही कोट का बटन घूमता, उसका दिमाग घूम जाता और झट से वह एक कठिन प्वाइण्ट सामने प्रकट कर देता। यह उसकी रोज की आदत थी। केस जीतना है तो वकीलों को कई तरह के हथकण्डे अपनाने होते हैं। तो उनने क्या किया कि जो धोबी उनका कपड़ा धोता था, उसको मैनेज किया और उसी बटन को दूर करवा दिया। विरोधी वकील साहब रोज की भांति कोट पहन कर आये। बहस चल रही थी। दोनों ओर से बहस बहुत उफान के रूप में आ गयी थी। अब जैसे ही वकील साहब ने अपने दिमाग को चलाना चाहा और बटन को घुमाना चाहा बटन नदारद थी तो पूरा दिमाग बटन में उलझ कर रह गया और जो प्वाइण्ट था वह उनके दिमाग में नहीं आया। नतीजा यह निकला कि विरोधी व्यक्ति केस हार गया, गौर साहब केस जीत गये। यह आदत का प्रभाव है। केवल बटन घुमाने की आदत से दिमाग कितना घूम गया।

उत्तम जीवन के लिए
अपनी सोच को उत्तम बनाएँ।
घटिया सोचवाला व्यक्ति
बढिया जीवन नहीं जी सकता।

कैसे भिगोयें धार्मिक संस्कार में

तीन तरह के लोग होते हैं- एक पत्थर की तरह, दूसरे मिट्टी की तरह और तीसरे रुई की तरह। सतही स्तर पर धर्म करनेवाले लोग पत्थर की तरह हैं। पत्थर अन्दर से नहीं भींगता, पानी में डालने के बाद भी अन्दर से पानी को ग्रहण नहीं करता। ऐसे लोग धर्म को ऊपर-ऊपर ही अपनाते हैं, आन्तरिक रूप से नहीं। धर्म करने के बाद भी धार्मिक-संस्कारों को ग्रहण नहीं कर पाते।

मिट्टी पर पानी सींचने से वह अंदर-बाहर भींग जाती है। मिट्टी जब तक गीली रहती है, अत्यंत मृदु रहती है, परंतु सूखकर कड़ी हो जाती है। ऐसे लोगों की धार्मिक-चेतना तभी तक होती है, जब तक वे धार्मिक वातावरण में रहते हैं। वातावरण के बदलते ही संस्कार लुप्त होने लगते हैं और चेतना सुप्त हो जाती है। ऐसे लोगों का धर्म, धार्मिक-क्रियाओं तक ही रहता है, व्यवहार में पूरी तरह उतर नहीं पाता।

रुई पानी में रहती है तो पानी को सब ओर से सोख लेती है, फिर उसे छोड़ती नहीं। ऐसे ही लोग सच्चे-धर्मात्मा होते हैं। ये लोग धार्मिक-क्रियाओं से अपनी धार्मिक-चेतना का उद्दीपन कर समर्जित संस्कारों को नष्ट नहीं होने देते। अतः हमें अपने को रुई की तरह धार्मिक संस्कारों से भिगोयें रखना है।

ज्ञानी एवं अज्ञानी की परिणति

मक्खी कफ पर बैठती है, उसके बीच घुस जाती है। परिणाम क्या होता है? उसके पंख उसमें ही फँसकर रह जाते हैं, बेचारी उसमें ही घुटकर मर जाती है। लेकिन वहीं एक चतुर मक्खी, एक किनारे बैठकर पूरे कफ को चाट जाती है, उसका कुछ नहीं होता। एक ज्ञानी और अज्ञानी में इतना ही अंतर है। अज्ञानी विषयों में आसक्त होकर उनके मध्य डूबा रहता है, जबकि ज्ञानी अनासक्त रहता हुआ विषयों के बीच भी उनसे अलिप्त रहता है। एक विषयों का भोग उनमें हर्ष-विषाद करके करता है, इसलिये उसको बंध होता है। दूसरा विषयों को तटस्थ भाव से भोगता है, इसलिये निर्बंध रहता है।

मजबूत हो श्रद्धा की ड़ोर

गर्मी के दिनों में शाम का समय पतंग उड़ाने का होता है। सुंदर-सुंदर पतंग आकाश में उड़ाई जाती हैं। पेंच भी लड़ाते हैं। एक शाम आकाश में केवल दो पतंग बचीं। उनमें एक बहुत सुंदर थी। इनमें भी पेंच लड़े और देखते-देखते वह सुंदर पतंग भी कट गई। अब वह ऊपर-नीचे होते चली जा रही थी। पीछे-पीछे बहुत से लड़के हाथों में ऊँची-ऊँची लकड़ियाँ लिये दौड़ रहे थे। वह कटी पतंग जमीन पर आ पाती कि उसके पहले ही उन लड़कों की छीना-झपटी में चिंदी-चिंदी हो गई।

इस दृश्य को देख मन में विचार आया कि पतंग की डोर अटूट है तब तक वह ऊँचे आकाश में शोभा पाती है। पर डोर के कटते ही उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है। यही स्थिति हमारे मनरूपी पतंग की भी है। श्रद्धा की डोर अटूट है, तो उसे कोई खतरा नहीं; किन्तु श्रद्धा की डोर टूट गई, तो कोई बचा नहीं सकता। ''लोग क्या कहेंगे'' इसका विचार करना फैशन है, तथा ''भगवान क्या कहेंगे।'' इसका विचार करना कर्त्तव्य है।

निष्पाप कौन?

एक बार ईसामसीह के पास गाँव के लोग किसी स्त्री को पकड़कर लाये और कहने लगे- स्त्री दुराचारिणी है, इसे दंड देना है। ईशु ने कहा, ''ठीक है, इसे कोड़े मारे जायें।'' गाँव के लोग बहुत खुश हुये। सब कोड़े मारने तैयार हो रहे थे। तभी ईशू ने कहा- ''किन्तु पहला कोड़ा वही मारे जो निष्पाप हो।'' सब के हाथ नीचे हो गये। सब चुप। निष्पाप कौन है? बहुत कठिन है।

उद्दायन राजा की कथा

समंतभद्र आचार्य श्री ने मर्मदृष्टा राजा उद्दायन को स्मरण करते हुये निर्विचिकत्सा- अंग का विवेचन किया है। स्वर्ग में चर्चा चल रही हैं। देवेन्द्र कहते हैं कि राजा उद्दायन निर्विचिकित्सा अंग को धारण करने वाले सच्चे सम्यग्दृष्टि हैं। एक देव को कौतुहल हुआ, ऐसा कौन पृथ्वीलोक में है, देवराज इन्द्र तक जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं। परीक्षा लेने का मन हो गया। एक मुनि का रूप धारण कर लिया। केश बिखरे हुये, क्षीणकाय/कृशवर्णी शरीर, घृणितरूप, गलितकुष्टमय काया, जगह-जगह से मवाद निकल रहा है, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।

अतिथि- संविभाग-व्रत को धारण करनेवाले राजा योग्यपात्र की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़े हैं। आहार लेने हेतु ये मुनि लड़खड़ाते हुये आते दिखाई पड़े। ज्यों-ज्यों वे पास आ रहे हैं, घृणित शरीर को स्पर्श कर दुर्गंधित हवा आसपास में दुर्गंध बढ़ा रही है। लोगों से दुर्गंध सही नहीं जा रही है, किन्तु राजा ने पूरी भक्ति-भावना से मुनि का पड़गाहन किया। विधिपूर्वक आहार में सर्व प्रकार के अनुकूल पदार्थ दिये। देव तो परीक्षा लेने आया था। अपनी योजना के अनुसार उसने आहार किया और अचानक वमन कर दिया। दुर्गंधित वमन सब और फैल गया। किन्तु आश्चर्य! राजा उद्दायन के मन में कोई घृणा- भाव नहीं आया, बल्कि पश्चाताप करते हुये मन में विचारने लगे- ''हे भगवान! मैंने ये कैसा विकृत आहार मुनिश्री को दे दिया? मुझसे ये कैसा अपराध हो गाय? कैसे मेरे पाप-कर्म का उदय आया कि महाराज को वमन हो गया?

राजा ने स्वयं सारा वमन साफ किया। मुनिश्री के हाथ पैर स्वच्छ करने तत्पर हुआ कि अब देव ने राजा पर ही वमन कर दिया। राजा के शुद्ध-शुभ्र वस्त्र घृणित वमन पदार्थो से लिप्त हो गये। अपना शरीर बाद में शुद्ध स्वच्छ करूँगा, पहले मुनिश्री के उपचार की आवश्यकता है। कहा- ''महाराज, क्षमा करें। आज पता नहीं मेरे कौन-से पाप-कर्म का उदय आया है, जो मेरे द्वारा आपको दूषित आहार दिया गया। आपको इतना कष्ट हुआ।''

देव की परीक्षा पूरी हो गई। वो प्रकट हुआ और कहा- राजन! दोष तुम्हारा नहीं है, मेरा है। मुझे देवेन्द्र की बात पर विश्वास नहीं हुआ और मैं तुम्हारी सच्चाई की परीक्षा लेने आ गया, पर तुम्हें देखकर मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। तुम-जैसे धर्मात्मा पुरुष अभी भी इस धरती पर विद्यमान हैं। जब तक ऐसे धर्मात्मा रहेंगें, धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती।

सुख-कहाँ

एक कोयल का बच्चा अपनी माँ से हठ करने लगा- ''मेरे पंख काले हैं, अच्छे नहीं हैं, मुझे मोर के जैसे सुंदर पंख चाहिये।'' कोयल ने बहुत समझाया, पर वह मचलता रहा। बालहठ के आगे कोयल विवश हो, मोर के पास गई। प्रार्थना की- ''आपके पंख बहुत सुंदर हैं, इनमें से एक दो मेरे बच्चे के लिये दे दो।'' मोर दयालु था। उसने पंख झड़ाये। कोयल का बच्चा यह देख हर्षित हो कूकने लगा। उसकी मधुर कूक सून मोर का बच्चा मचल गया और मोर से कहने लगा- ''मेरी आवाज कितनी कर्कश है, बेसुरी है। कोयल की आवाज कितनी मधुर है, मुझे तो कोयल-जैसी आवाज चाहिये।''

क्या स्थिति है? मोर का बच्चा कोयल की आवाज की चाहत में है, कोयल का बच्चा मोरपंख की चाहत में। जो जिसके पास है, उससे वह संतुष्ट नहीं है। सभी एक-दूसरे में सुख देख रहे हैं।

केवल स्वहित की ही नही
सर्वहित की भी सोचो।
स्वहित की चिन्ता स्वार्थ है और
सर्वहित की सोच परमार्थ है।

सजा नहीं हृदय परिवर्तन करो

आचार्य समन्तभद्र ने सेठ जिनेन्द्रभक्त का स्मरण किया है, जिन्होंने मार्ग को कलंकित होने से बचाया था। जिनेन्द्रभक्त सेठ सही अर्थों में जिनेन्द्रभक्त थे।

अतुल वैभव-संपदा के स्वामी सेठ जिनेन्द्रभक्त सच्चे जैनश्रावक थे। उनके भवन के ऊपरी खंड में चैत्यालय था, उसमें विराजित भगवान चन्द्रप्रभु पर रत्नजड़ित छत्र था। उस इलाके के चोरों के सरदार के मन में वह छत्र चुराने की तीव्र लालसा हुई। गिरोह के एक कुशल/चालाक चोर ने उसे चुरा लाने का दावा किया।

सरदार ने कहा- ''इन्द्र के सिंहासन का छत्र चुराना संभव हो सकता है, पर सेठ के यहाँ से छत्र चुराना असंभव है। दिनरात पहरा रहता है।'' उस चोर को अपने कौशल पर विश्वास था। उसने इस छत्र को चुराने का निश्चय कर लिया।

चोर में बहुत से गुण थे। उसने क्षुल्लक का रूप धारण किया। बहुत से लोगों के साथ सेठ के नगर की सीमा पर पहुँचा। सेठजी ने उनकी अगवानी की और प्रार्थना की कि वे इस नगर में कुछ दिन अवश्य रुकें और सबको धर्म का लाभ देने की कृपा करें। चोर ज्ञानी और वाक्पटु भी था। कहा- ''हम तो सदा विहार करनेवाले साधु हैं। नदी में प्रवाह होता है, तो जीवंतता रहती है। प्रवाह अवरुद्ध हुआ, वहाँ विकृति आ जाती है। यहाँ आये हैं, तो कुछ दिन आपके आग्रह पर धर्मोपदेश देंगे।''

क्षुल्लकजी के ठहरने की व्यवस्था सेठजी के भवन के चैत्यालय में की गई। रोज प्रवचन होने लगे। बहुत लोग आते। वह ज्ञान तथा वाक्पटुता से लोगों को प्रभावित करने लगा। ज्ञान जब केवल दूसरों को प्रभावित करने के लिये हो, तो वह केवल पांडित्य का बोझ बनकर रह जाता है। वही ज्ञान जब स्वयं के लिये होता है, तो आत्मिक शंति का आधार बनता है। इस तरह उसने अपनी वाक्चातुरी से लोगों को बहुत आकर्षित कर लिया औरों को प्रभावित करने के लिये उसने

अपनी चर्या भी वैसी ही बनायी, किन्तु उसकी चर्या स्वयं के कल्याण की भावना से शून्य थी।

अचानक एक दिन सेठजी को कुछ आवश्यक कार्यवश नगर से बाहर जाने की बात आई। सेठजी ने क्षुल्लकजी को अपनी दुविधा बताई तथा उनसे प्रार्थना की कि वे उनके भवन में ही पूर्ववत प्रवचन लाभ देते रहे एवं उनके लौटने तक रुकने की कृपा करें। चोर के लिये अच्छा अवसर मिल गया। सेठजी को निश्चिन्त होकर जाने को कहा। उसने उसी रात छत्र चुराने का निश्चय किया।

सेठजी को जहाज द्वारा जाना था। बंदरगाह पहुँचने पर पता चला कि आज जहाज नहीं जा सकेगा। रात हो गई थी, अतः सेठ बंदरगाह के पास विश्रामगृह में ठहर गये। इधर रात्रि में चोर ने सावधानी से छत्र उतारकर, अपने दुपट्टे में छुपाकर बाहर की ओर कदम बढ़ाया। वह चुपके-चुपके निकल जाना चाह रहा था कि एक पहरेदार को कुछ शंका- सी हुई। अंधेरा था, उसने आवाज दी- ''कौन है? रुको।'' आवाज सुनते ही वह भागने लगा। पहरेदार ने शोर मचा दिया। सब तरफ 'चोर-चोर, पकड़ो' गूँजने लगा। चोर जान बचाने तेजी से भागने लगा। पीछे-पीछे पहरेदार तथा बहुत से लोग। भागते-भागते चोर उसी विश्रामगृह में घुसा। आहट से सेठजी की नींद खुल गई। चोर की नजर सेठजी पर पड़ी, वह उनके चरणों में गिर पड़ा। ''सेठजी मुझे बचा लो।'' बाहर की आवाज भी सुनाई देने लगी। सब घटनाक्रम स्पष्ट हो गया। तब तक सब लोग आ गये। क्रोध में कहने लगे- ''ये धूर्त है, पाखंडी है, इसने भगवान का छत्र चुराया है।''

सेठजी समझदार व्यक्ति थे। उन्होंने लोगों को समझाया- ''भाईयो! आप लोगों से भूल हो रही है। इन क्षुल्लकजी ने चोरी नहीं की। मैंने ही ये छत्र लेकर इन्हें यहाँ बुलवाया है। आपने बिना जाने इन पर शंका की और अनादर किया है। आपको इनसे क्षमा माँगनी चाहिये।'' सब लोग क्षुल्लक-वेषधारी चोर से क्षमा माँग वापस लौट गये। चोर हतप्रभ होकर सेठजी को देखता रहा। उपगूहन- गुणोचित सेठजी चोर के हृदय-परिवर्तन के सेतू बन गये। चोर कहने लगा- ''आज आपकी कृपा से मुझे जीवनदान मिला है। मैं आज ये संकल्प लेता

हूँ कि आज से मैं इसी रूप के अनुसार व्रती बनूँगा। उसने क्षुल्लकव्रत अंगीकार किया।

सेठ के उपगूहन - अंग से दो बातें स्पष्ट हुईं। एक-उस चोर को सन्मार्ग पर आने की प्रेरणा मिली, उसका कल्याण हुआ। दूसरी- क्षुल्लकजी ने चोरी की है, यह असत्य बात लोगोंां के मन में नहीं आ सकी।

फूट का कीड़ा

एक बहुत विशाल वृक्ष था, हरा भरा। उसकी घनी छाया राहगीरों की थकान मिटाती, फलफूल से लदी डालें पक्षियों को बसेरा देतीं। सदैव पक्षियों की चहचाहट बनी रहती थी। एकाएक वह पेड़ सूखने लगा। पत्तियाँ पीली पड़ने लगीं, झड़ने लगीं। शाखायें सूखकर टूटने लगीं। गाँव के लोगों ने खूब पानी डाला, खाद आदि डाली, पर सब व्यर्थ। गाँव के एक अनुभवी वृद्ध को सभी ने अपनी समस्या बताई। वह वृक्ष देखने आये। आसपास की मिट्टी खोदी, तो पाया जड़ में कीड़े लगे हुये थे। इसलिये पानी और खाद से लाभ नहीं हो रहा था। उन्होंने कीड़ों को अलग करने का उपाय करने को कहा। कीड़े अलग हो जायेंगे तो वृक्ष स्वतः हरा भरा हो जायेगा।

बिल्कुल यही स्थिति समाजरूपी वृक्ष की है। इसमें फूट का कीड़ा लग गया है। समाज भी तभी तक फलता- फूलता है, जब तक उसमें फूट न हो।

हमारी वाणी
वीणा जैसी होनी चाहिए,
वाण जैसी नहीं।

वारिषेण की कथा

वारिषेण महाराज एक जैनमुनि हुये। गृहस्थ-अवस्था में वे एक राजघराने से थे। वैभव-विलास त्यागकर दीक्षित हुये। उनके साथ पुष्पडाल भी मुनिव्रत से दीक्षित हुये। किन्तु 12 वर्ष का अंतराल बीत जाने के बाद भी पुष्पडाल अपनी पत्नी के व्यामोह से मुक्त नहीं हो पाये। पत्नी की स्मृति उन्हें धर्म-पथ से विचलित कराती रहती थी। चित्त में अस्थिरता बनी हुई थी। मुनि वारिषेण ने उनके अंतस्थल की बात जान ली। कहा है ''दुसीलमपि जाणंता'', आचार्य शिष्य के मन में होने वाले दु:शील को भी जान लते हैं। उनमें क्षमता होती है परखने की। एक बार भगवान महावीर के समवसरण में दोनों गये। वहाँ एक देव एक किसी 'पति के वियोग में पत्नी की दशा' का वर्णन कर रहे थे- पति के अभाव में पत्नी तड़पती रहती है, वियोग में प्राण त्याग देती है, उसे तो मखमल की शैय्या पर भी नींद नहीं आती। इन बातों को सुनकर पुष्पडाल के मन का पत्नी-मोह और तीव्र हो उठा। मुनि वारिषेण इसे ताड़ गये। उन्होंने इसका निदान करना आवश्यक समझकर राजगृही की ओर प्रस्थान कर दिया। राजगृही की सीमा में प्रवेश करने के पूर्व महारानी चेलना के पास संदेश भिजवाया- ''मैं आ रहा हूँ। सीधे अंत:पुर में प्रवेश करूँगा। सभी 32 रानियों को पूर्ण शृंगार के साथ उपस्थित रहने को कहा जाए।''

महारानी चेलना विचार करने लगी- ''ये बात क्या है? अवश्य इसमें कोई रहस्य है।''

महारानी ने दो सिंहासन रखवाए, एक रत्नजड़ित दूसरा काष्ठनिर्मित। मुनि वारिषेण और पुष्पडाल ने प्रवेश किया। मुनि वारिषेण तो काष्ठनिर्मित आसन पर बैठ गये, किन्तु पुष्पडाल ने रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठने में कोई संकोच नहीं किया। महारानी यह देख रही थीं। उन्हें समझ में आ गया कि वारिषेण अंत:पुर में आये जरूर हैं, पर उनके अंतरंग से अंत:पुर समाप्त हो चुका है। वे पूर्णरूप से स्वयं में ध्यानस्थ हैं। 32 रानियाँ अप्सराओं जैसे सौन्दर्य में उपस्थित थीं। मुनि वारिषेण ने पुष्पडाल से कहा- ''ये 32 रानियाँ हैं। मैं इनका त्याग कर चुका हूँ।

इसमें से तुम जिसे चाहो, चुन सकते हो।'' इतना सुनना था कि पुष्पडाल अंदर तक हिल गया। उनकी चेतना पर पड़ी अज्ञान की परत धीरे-धीरे छँटने लगी, उनका व्यामोह विलीन हो गया। वे मुनि वारिषेण के चरणों में गिर पड़े। कहने लगे- ''आप धन्य हैं प्रभु, आज आपने मेरी आँखें खोल दीं। आप इतना सब वैभव/साम्राज्य छोड़कर/त्यागकर मुक्त हो गये और मैं अपने अज्ञान व मोह में फंसा पत्नी की स्मृति से मुक्त नहीं हो सका। आज आपकी कृपा से मैं पुनः अपने मार्ग पर स्थिर हुआ हूँ। हे स्वामी! अब वनविहार करें और मुझे अपने अंतस् के अंतःपुर का मार्ग दर्शायें।'' यह है स्थितिकरण अंग।

गुण ग्रहण का भाव रहे

एक चित्रकार था। उसने एक चित्र बनाया। उसने नीचे लिखा- ''इस चित्र में त्रुटि हो तो बतायें।'' चित्र सड़क के किनारे रख दिया। दूसरे दिन चित्र में जगह-जगह निशान/दाग मिले। सैकड़ों लोगों ने त्रुटियाँ निकाल दीं।

चित्रकार ने अगले दिन दूसरा चित्र बनाया। अबकी बार नीचे लिखा- इसमें एक कमी रह गई है, कृपया उसे सुधार दें। चित्र दिन भर रखा रहा। बहुतों ने उसे देखा, पर सुधार किसी ने नहीं किया।

दोष निकालने में हर व्यक्ति निष्णात है परन्तु गुण-ग्रहण बहुत दुर्लभ है।

मधुर वचनों से प्रेम का पूल निर्मित होता है और कटुवचनों से द्वेष की दीवारें।

मत उठाओ मजबूरी का फायदा

श्रावकों के आचरण को चरितार्थ करनेवालों में से एक थे श्रीमद् राजचन्द। वे एक जौहरी थे। व्यापारी होने के साथ-साथ तत्त्वज्ञानी थे। गांधी जी उन्हें बहुत मान देते थे। उनके जीवन में करूणा थी। उनका एक व्यापारी मित्र मुम्बई में रत्नों का व्यापार करता था। उस मित्र ने उनसे रत्नों का एक सौदा किया। भाव और मात्रा तय हुई। कागज पर लिखित अनुबंध हो गया। इस बीच जो रत्न उस व्यापारी को जौहरीजी के पास भिजवाने थे, उनके दाम बहुत बढ़ गये। सौदे के अनुसार यदि वह उन रत्नों को देता, तो उसे बहुत नुकसान होता। उसका कारोबार डूब जाता। इससे वह चिंतित था।

राजचंद जी उसकी परिस्थिति समझ रहे थे। उन्हें आभास हो रहा था कि इस सौदे के कारण मित्र दुविधा और चिंता में पड़ा है। उसे चिंतामुक्त करते वे मुंबई पहुँचे। मित्र उन्हें देख चिंतित होकर सोचने लगा-''सौदे के मुताबिक रत्न अथवा रकम लेने आये हैं शायद।''

राजचंदजी बोले- ''मित्र! अनुबंध का कागज तो लाओ।''

मित्र-''आप मुझे थोड़ा समय दे दो, मैं आपको पूरा पैसा दे दूँगा।''

राजचंद-''पहले वह कागज तो लाओ।''

विवश हो उसने अनुबंध का कागज उन्हें दिया। रायचंदजी ने उसे हाथ में लेते ही फाड़ दिया। व्यापारी मित्र ने आश्चर्यसहित पूछा- ''मुझे मालूम है, वर्तमान बाजार के भाव में आप सौदे के अनुसार मुझे माल नहीं दे सकते। आपका कारोबार चौपट हो जायेगा। इस सारी चिंता की जड़ है- यह कागज। मैं नहीं चाहता कि मेरे थोड़े से लाभ के पीछे किसी का घर उजड़े। मैं जैन हूँ, दूध तो पी सकता हूँ, खून नहीं इसीलिये मैंने अनुबंध फाड़ दिया। आप निश्चिन्त रहें और भूल जाएँ कि हमारे और आपके बीच कोई सौदा हुआ है।'' वह राजचंदजी के इस व्यवहार से अविभूत हो उनके चरणों में गिर पड़ा। यह है मानवीय भावना से युक्त सच्चे जैन का आचरण, दूसरे की विवशता को समझनेवाले मित्र का आचरण। उन्होंने उसकी मजबूरी का फायदा नहीं उठाया। मित्र की रक्षा के लिये अपना लाभ भी छोड़ दिया। धन्य हैं ऐसे लोग।

पं. गौपालदास बरैया की ईमानदारी

अपने आचरण के लिये पं. गोपालदास बरैया भी प्रसिद्ध हुये। पंडिताई करते थे, किन्तु उसे आजीविका का साधन कभी नहीं बनाया। एक छोटी-सी दुकान से उनकी आजीविका चलती थी। पंडिताई के कार्य से जाते, तो केवल वास्तविक मार्गव्यय ही लेते। कभी मार्गव्यय में 10 रू. भी बच जाते तो उन्हें मनीआर्डर से वापस कर देते। जीवन में सच्चे अर्थो में पाँच अणुव्रतों का पालन करते थे। एक बार वे अपने छोटे पुत्र के साथ मुंबई गये। वहाँ पहुँचने पर उन्हें ध्यान आया कि पुत्र की उम्र 3 वर्ष से अधिक हो गई। उन्होंने उसका आधा टिकट नहीं लिया था। 3 वर्ष तक के बच्चों की टिकट नहीं लगती थी। मन में पश्चात्ताप होने लगा। घर आकर उसके टिकिट के रूपये तथा क्षमायाचना पत्र रेल्वे के कार्यालय में मनीआर्डर कर दिये। रेल्वे का अधिकारी कोई अंग्रेज था। वह इनकी ईमानदारी से बहुत प्रभावित हुआ। उसने एक नोटिस रेलवे में घुमा दिया कि ''पंडित गोपालदास बरैया, मुरैनानिवासी की रेलयात्रा के दौरान टिकिट आदि देखने की आवश्यकता नहीं है। वे एक ईमानदार व्यक्ति हैं।'' कहाँ गये ऐसे लोग?

मरने से कठिन मरने का भय

एक दार्शनिक चला जा रहा था। उसने अचानक मुड़कर देखा कि कोई छाया उसका पीछा कर रही है। उसने पूछा- तुम कौन हो? मौत हूँ। कुछ लोगों का आज जाने का नम्बर है, मैं उन्हें लेने जा रही हूँ, सौ लोगों को मुझे ले जाना है। ठीक है। थोड़ी देर बाद वही मौत लौटकर आ रही थी। दार्शनिक ने उससे पूछा कि हद हो गयी। जिंदगी तो झूठी होती है, पर मौत कब से झूठी हो गयी? मौत बोली-क्यों क्या बात है? तुम यहाँ से जाते वक्त मुझसे कह गयी थी कि सौ लोगों को मुझे लाना है और तुम हजार को मारकर ले जा रही हो। मौत ने कहा- क्या बताऊँ, मैं कभी झूठ नहीं बोलती। मैंने तो केवल सौ को मारा है। बाकी जो नौ सौ मरे वे मेरे भय से मर गये हैं।

जैसा सोचोगे वैसा बन जाओगे

शिष्य ने गुरु से पूछा- गुरुदेव ध्यान का रहस्य जानना चाहता हूँ।

गुरुदेव ने कहा- तुमने भैंसे को देखा है। यदि हाँ, तो तीन दिन तुम भैंसे का ध्यान करो। फिर मैं तुझे परमात्मा के ध्यान का रहस्य बतलाऊँगा।

शिष्य श्रद्धालु था। गुरु की आज्ञा से एक गुफा में जाकर भैंसे का ध्यान करने लगा। भैंसे के ध्यान में वह इस तरह मग्न हो गया कि खुद को ही भैंसा जैसा महसूस करने लगा। तीन दिन पूरे हो गये। गुरु ने गुफा के द्वार पर आकर आवाज लगाई- 'तेरे ध्यान का काल पूरा हो गया है, अब तू बाहर निकल आ।'

शिष्य ने कहा- 'गुरुदेव! मैं बाहर निकलने की बहुत कोशिश कर रहा हूँ, पर निकल नहीं पा रहा हूँ, क्या करूँ? मेरे सींग बहुत बड़े हैं, वे द्वार पर अटक रहे हैं, मैं बाहर कैसे निकलूँ?

आदमी भैंसे का ध्यान करता हुआ, भैंसा बन सकता है, तो परमात्मा का ध्यान करते हुए परमात्मा क्यों नहीं बन सकता?

मन्दिर है पॉवर पॉइन्ट

आप सबके मोबाइल का फॅक्शन कब तक चलता है? जब तक कि उसकी बैटरी काम करती है और जब बैटरी उसकी डिसचार्ज होती है तो क्या करते हैं आप? उसको चार्ज करते हैं। जहाँ कहीं भी चार्ज कर लेते हैं? नहीं महाराज, पॉवर पिन पर चार्ज करना पड़ता है और उसके लिये हम पॉवर पॉइन्ट ढूंढ़ते हैं। पिन में लगाते हैं तब वह चार्ज होता है। मोबाइल को चार्ज करने के लिये आप मोबाइल को पॉवर पॉइन्ट तक ले जाकर पॉवर पिन से जोड़ते हैं तब आपका मोबाइल चार्ज होता है। मन को चार्ज करने के लिये भगवान के मन्दिर में अपने आपको जोड़ोंगे तभी आपका मन चार्ज हो पायेगा।

मृत्युबोध

एक संत किसी उपवन में ठहरे हुये थे, उनकी ख्याति सुनकर सारा नगर उनके दर्शन के लिये उमड़ पड़ा। वहाँ के राजा ने सुना-वह भी संत के दर्शन के लिये गया। जैसे ही राजा ने संत की मुद्रा देखी आँखें फाड़कर आश्चर्यचकित हो गया। संत ने राजा के आश्चर्य को भाँपते हुए कहा- 'राजन् तुम्हारा आश्चर्य सही है।'

राजा- अच्छा तो तुम वही हो। संत- हाँ राजन्! मैं वही हूँ, जैसा तुम सोच रहे हो, देख रहे हो, ठीक ही है। राजा-इतना बड़ा परिवर्तन कैसे? कल तक तो तुम्हारा स्वभाव उच्छृंखल, उद्दंडी एवं उपद्रवी था। आज इतना शान्त, सौम्य, सरल कैसे?

संत मुस्कुराते हुये बोले-मैं तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान पीछे करूँगा, लेकिन अभी मेरे दिव्यज्ञान में जो झलक रहा है, वह तुम्हारे लिये चिन्ता का विषय है।

राजा- ऐसा क्या दिख रहा है, कृपया आप बतलायें। संत-राजन्! मुझे तुम्हारी आयु सिर्फ सात दिन की दिख रही है। आज रविवार से आने वाले शनिवार तक। इस अवधि में तुम्हें जो कुछ करना है, कर लो! फिर मैं तुम्हें अपने जीवन का रहस्य बतलाऊँगा। राजा के चेहरे का रंग उड़ गया। दरबार भी गया, लेकिन दुःखी मन से। अब क्या होगा? हर समय आँखों के आगे मौत झूलने लगी। जैसे-तैसे छः दिन गुजरे, सातवें दिन संत के पास गया और कहा- मेरी जिज्ञासा का समाधान करिये।

संत ने कहा- 'मैं तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान जरूर करूँगा, लेकिन पहले यह बताओ कि इन छः दिनो में तुम्हें कितनी बार क्रोध आया, कितनी बार मान किया, मोह और लोभ से उलझे, शोषण किया, कितनों का दमन किया?' राजा बोला- 'नहीं संत महाराज, मैंने ये कुछ नहीं किया, सिर्फ मैंने इन दिनों भगवान् का भजन किया। आपने कहा था कि सिर्फ सात दिनों की आयु बची है, इसलिये मैंने सोचा इसे भगवान् का भजन करके सार्थक क्यों न बनाया जाये।'

संत ने हँस के जबाव दिया- 'राजन्! बस यही मेरे जीवन का रहस्य है। जब मैंने तुमसे कहा कि तुम्हारी जिंदगी सिर्फ सात दिनों की है, तो तुमने उसे सार्थक करने का प्रयास किया, मुझे तो अपनी जिंदगी का पता ही नहीं, 24 घण्टे मौत आँखों के आगे झूलती है, हर पल अन्तिम पल लगता है, इस मृत्युबोध से ही मैंने अपने जीवन को रास्ते पर लगाने का पाठ सीखा है-बस यही मेरे जीवन का रहस्य है।'

हमारी जिंदगी कुछ भी नहीं है। सोमवार को माँ के पेट में आना, मंगल को पैदा होना, बुध को जवान होना, वृहस्पति को शादी करना, शुक्र को बच्चे पैदा करना, शनि को बूढ़ा होना और रविवार को मर जाना। जब भी इन्सान का जन्म या मरण होगा रविवार से शनिवार के बीच में ही होगा। इसे पहचान लो, इससे ज्यादा क्या उपदेश होगा?

जो जहाँ रहता वहाँ रमता

गन्दी नाली में एक कुत्ता पड़ा हुआ था। उसके शरीर में ढेर सारे घाव थे। उनमें कीड़े बिलबिला रहे थे। बहुत तेजी से कराह रहा था वह। इसी बीच कोई देवदूत उधर से गुजरे। कुत्ते की हालत देख उनका मन दया से द्रवीभूत हो उठा। उस देवता ने कुत्ते से कहा तुम्हारा जीवन बड़ा दुःखी है। तुम बड़े कष्ट में हो। एक काम करो, तुम मेरे साथ स्वर्ग में चलो। वहाँ तुम्हारा कष्ट खत्म हो जायेगा। कुत्ता एकदम से तैयार हो गया। बोला- चलो मैं स्वर्ग चलता हूँ तुम्हारे साथ। कहाँ है तुम्हारा स्वर्ग चलो। ज्यादा दूर नहीं है, कुछ ही मिनटों में पहुँच जाओगे। कुत्ता चलने को तैयार हुआ फिर रुक कर पूछा तुम्हारे स्वर्ग में क्या-क्या है? बोले हमारे स्वर्ग की दुनिया बड़ी रंगीन है, बड़ा आनन्द है, किसी चीज की कमी नहीं है। यह है, वह है, तमाम बातें जो स्वर्ग में होती हैं, उसने बता दीं। सब कुछ सुनने के बाद कुत्ते ने पूछा- तुम्हारे स्वर्ग में ऐसी नालियाँ है कि नहीं। वह बोला- हमारे स्वर्ग में गन्दगी नहीं होती इसलिये ऐसी नालियाँ नहीं होती। कुत्ता बोला- ऐसी नालियाँ नहीं तो मुझे ले जाकर क्या करोगे? क्योंकि ऐसी नाली नहीं तो तुम्हारे स्वर्ग में जाकर मैं क्या करूँगा? ऐसे लोगों को क्या कहें, अब कुत्ते को नाली में ही रहने में मजा है, तो देवदूत क्या करे।

आओ बने अनाथ से सनाथ

सम्राट श्रेणिक अपनी महारानी चेलना के साथ वन विहार को जा रहे थे। देखते क्या हैं, एक तरुण तपस्वी नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण किए तपस्या में लीन है। श्रेणिक उन मुनिराज की ऐसी सुन्दर काया को देखकर मुग्ध हो जाता है। देवों जैसे अप्रतिम सौन्दर्य के धनी उन मुनि को तपस्या की मुद्रा में देख श्रेणिक का चित्त मर्माहत हो उठा। वह सोच में पड़ गया कि ऐसा कौन सा देव कुमार अपनी स्वर्ग की कोमल शय्या को त्यागकर इस तपस्या के मार्ग को अंगीकार कर रहा है? आखिर क्या कारण है? उसे क्या कमी है, जो स्वर्ग के सुख-वैभव को त्यागकर अपनी सोने जैसी जवानी को मिट्टी में मिला रहा है। इसी चिन्तन के साथ आगे बढ़ते-बढ़ते वह उन मुनिराज के समीप पहुँचा, उनकी वन्दना की और पूछ बैठा कि- प्रभो! आखिर आपको क्या कमी थी, जो आप अपनी इस कोमल-कुमारवय में इस कठोर साधना में उतर आये। तुम्हारी कोमल काया सुन्दर देहयष्टि और यह यौवन तो भोगों को भोगने के लिए है। जंगलों के कंटकाकीर्ण मार्ग में चलने का कदम क्यों उठाया, आखिर क्या कारण था?

संत ने सहज भाव से कहा- राजन्! मैं अनाथ था। मैंने पाया कि संसार का कोई कितना बड़े से बड़ा आत्मीय क्यों न हो, कोई किसी का कितना बड़े से बड़ा प्रिय भी क्यों न हो, कभी भी किसी की पीड़ा नहीं हर सकता, किसी का साथ नहीं दे सकता इसलिए मैंने इस मार्ग को अपना लिया है।

श्रेणिक विस्मय से भर गया। इतनी सुन्दर काया को धारण करने वाले इस तेजस्वी, कान्तिमान, द्युतिमान, युवा को किसी ने अपनाया नहीं। उसे कोई नाथ नहीं मिला। उसे कोई शरण नहीं मिली। आश्चर्य! लड़का नादान मालूम पड़ता है। इसने तपस्या के इस कठिन मार्ग को चुना है। श्रेणिक के राज्य में कोई अनाथ नहीं हो सकता। राजगृही का राज्य तुम्हें सनाथ करेगा और रानी चेलना की गोद तुम्हें आँचल देगी। चलो, मैं तुम्हें सनाथ करता हूँ।

राजन्! तुम, तुम्हारा वैभव और तुम्हारी राजेश्वरी, सभी तो अनाथ हैं। जो स्वयं अनाथ है, वह दूसरे को सनाथ कैसे कर सकता है?

सम्राट श्रेणिक के सामने आज तक इतनी दु:साहसपूर्ण बात करने का साहस किसी को नहीं हुआ था। श्रेणिक एकदम विस्मित रह गया। उसने कहा- जिसके राज-महलों में इन्द्रों और महेन्द्रों का वैभव न्यौछावर होता है, समस्त आर्यावर्त में जिसका एकछत्र आधिपत्य है, उसे अनाथ कहते तुम संकोच नहीं करते?

उन तपस्वी ने कहा- राजन्! काश तुम अनाथ और सनाथ के रहस्य को जान पाते। इसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता, केवल अनुभवगम्य है।

श्रेणिक उन मुनिराज से काफी प्रभावित हुआ। उसने कहा कि यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं आपका अनुभव सुनना चाहता हूँ। मुनिराज ने कहा- आपने लोकविश्रुत उज्जयिनी का नाम सुना होगा। मैं वहाँ के राजा धनसंचय का पुत्र था। मेरे पिता के वैभव में कोई कमी नहीं थी। बहुत विस्तृत राज्य और अपार धन-सम्पदा थी। मैं उनका इकलौता पुत्र था। सब कुछ ठीक गति से चल रहा था। लेकिन एक बार अचानक मेरी आँखों में तीव्र वेदना हुई। उस वेदना के प्रभाव से मेरे पूरे शरीर में दाहज्वर व्याप्त हो गया। किसी शत्रु के तीक्ष्ण बाणों की तरह मेरे अंग-अंग बिधने लगे। इन्द्र के वज्र के समान मेरी कमर, छाती, मस्तक सब कुछ उमेठने लगे।

उस पीड़ा के कारण मैं कराह उठता। मेरी कराह को सुन मेरे परिजनों की आँखें मुंद जाती। यही मेरा अनाथत्व था, मेरे परिजनों की आँखें मुंद जाना। जब मैं उस पीड़ा में जोर से चिल्लाता तो मेरे सारे स्वजन अपने कानों में अँगुलियाँ रखकर उसे बन्द कर लेते। बड़े वैद्य को बुलाया गया, मन्त्र-तन्त्र, औषधि भी मेरी पीड़ा को हर न सके। चन्द्रकान्त मणि का शीतल जल भी मेरे दाह को हर न सका। मेरे पिता का अपार वैभव भी मुँह ताकता रह गया। वह भी मेरा परित्राण नहीं कर सका। मेरी माँ की ममतामयी गोद भी मेरी पीड़ा को हर न सकी। मेरी ही माँ से जन्मे, मेरे सहोदर भाई-बहनों का प्रेम भी मेरी पीड़ा को हरने में समर्थ न हो सका। मेरी एक प्राणप्रिया पत्नी थी। जो मुझे दिल से प्यार करती थी। सच्चे अर्थों में दो देह और एक प्राण थे। वह मुझमें ही रमी रहती। अपना खाना-पीना, सोना

आदि सबका ध्यान भूलकर वह रातदिन मुझमें ही रमी रहती। अपने हाथों को मेरे सिरहाने रख मेरी सेवा करती। लेकिन उसकी सेवा और परिचर्या भी मेरी पीड़ा को न हर सकी।

एक दिन मेरी पीड़ा पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। मुझे अत्यन्त विचलित सी कर गयी। मेरी इस पीड़ा की स्थिति में मेरी प्राण-प्रिया पत्नी की आँखों से झलका हुआ आँसू भी व्यर्थ होकर ढलक गया। वह भी मेरी पीड़ा को हर न सकी। तब मैंने समझा की कोई किसी का नाथ नहीं है। पूर्णत: अनाथ हूँ। तभी मैं अपने भीतर ही भीतर जाग गया।

मेरे मन में यह संकल्प आया कि संसार में कोई किसी का साथी नहीं है। मेरी पीड़ा दूर हो जाए तो मैं प्रात: होते ही विरक्त हो जाऊँगा, प्रव्रजित हो जाऊँगा, दीक्षित हो जाऊँगा। राजन्! मेरा इतना संकल्प लेना ही था कि मेरा ज्वर, ज्वार की भाँति की उतर कर शान्त हो गया। सुबह होते-होते मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। मैं सीधे भगवान् महावीर के चरणों में आकर दीक्षित हो गया। अब अपने आपमें मैं पूर्ण सनाथ हो गया। राजन्! मैं यह कहता हूँ कि संसार में कोई किसी का साथ दे नहीं सकता। संसार की हर वस्तु और संसार का हर व्यक्ति अपने आपमें अनाथ है।

वीतरागता की खटाई

मिठाई खाने से नशा बढ़ता है, खटाई खाने से नशा उतरता है। बस नशा उतारना चाहते हो कि बढ़ाना। नशा तो बढ़ा ही रहे हो। आप जो सेवन कर रहो हो, वह केवल आपके मोह के नशे को बढ़ाने वाला है। उसको कम करना चाहते हो तो घण्टे भर की सत्संग रूपी खटाई खा लो, तो धीरे-धीरे स्वयमेव कम हो जायेगा।

वीतरागता की खटाई का जल तुम जैसे ही अनुपान करोगे, तुम्हारा नशा पल में उतर जाएगा।

शरीर से आत्मा की भिन्नता

कभी-कभी बच्चों के खेल में भी तथ्य भरी बातें देखने को मिल जाती हैं। एक बारह वर्षीय बालक अपने साथियों से कह रहा था कि यदि तुम मुझे छू लो तो मैं तुम्हें मिठाई खिलाऊँगा। एक बालक झट से उसका हाथ छू लेता है और कहता है- मैंने तुम्हें छू लिया। बालक बोलता है- मुझे कहाँ छुआ! यह तो मेरा हाथ है। दूसरे ने उसकी पीठ-कमर को पकड़ा और कहा देखो- मैंने छू लिया। तुमने मुझे कहाँ छुआ, यह तो मेरी कमर है। तीसरे ने उसके पैर पकड़े और कहा- मैंने छू लिया। वह बोला मुझे कहाँ छुआ, यह तो मेरा पैर है। चौथे ने उसकी गर्दन को छुआ और कहा मैंने छू लिया। उसने फिर कहा- तुमने तो मेरी गर्दन को छुआ है। पाँचवे ने उसके सिर को छुआ। उसने उसे भी कहा- तुमने मेरे सिर को छुआ है, न कि मुझे। सब साथी असमंजस में पड़ गये। बोले- क्या कह रहे हो? बालक बोला- मैं ठीक कह रहा हूँ। तुम मुझे छू भी नहीं सकते। तुम मुझे छू ही नहीं सकते। तुम जिसे छू रहे हो वह शरीर है। मैं तो आत्मा हूँ। मैं शरीर से भिन्न हूँ। आत्मा को छुओ।

आप जानते हैं वह बालक कौन था? बालक का नाम था विनोबा। जिन्हें बचपन में ही शरीर से भिन्नता का बोध हो गया और वह व्यक्ति सारी जिंदगी संत की तरह जिया। उसने अपने भीतर के संतत्व को अभिव्यक्त किया।

पुरुषार्थ करो

टोडरमल जी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा प्रश्न उठाया है, कि- होनहार होगी तभी तो हम कामयाब होंगे। तब उनने कहा- 'जब तेरा यह सिद्धान्त है, तेरा यह पक्का विश्वास है कि जो होना होता है वही होता है, तो तू कुछ भी करने का उद्यम मत कर। तू खान-पान व्यापार आदि में उद्यम करे और यहाँ होनहार बतावे। सो जानिये यह तेरा सांचा सिद्धान्त नहीं है। **झूठे मानादीते बाते बनावत रहे हैं।** बाकी जगह क्रमबद्धपर्याय नहीं आती, केवल धर्म की सभा में क्रमबद्धपर्याय याद आती है।

यह रूप तुम्हारा कितने पल का?

जैन पुराणों में एक बड़ी अच्छी कथा आती है सनतकुमार चक्रवर्ती की। वे बड़े चक्रवर्ती राजा थे। कामदेव सा रूप था। अद्‌भूत रूपराशि के धनी थे। उनका सौन्दर्य इतना निखरा हुआ था कि स्वर्ग में देवराज इन्द्र भी उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाता था। एक दिन देवराज इन्द्र अपनी इन्द्रों की सभा में बैठा था कि अचानक चर्चा आई कि मर्त्यलोक में सबसे सुन्दर कौन है? देवराज इन्द्र ने कहा- मर्त्यलोक में सनतकुमार चक्रवर्ती सा सुन्दर दूसरा कोई नहीं है। सभा में बैठे एक देव के मन में कौतूहल जागा, चलकर देखना चाहिए कि सनतकुमार के रूप में ऐसी कौन सी खासियत है, जिसके कारण हमारे देवेन्द्र भी उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। वह देव रूप बदल कर नीचे आया। जिस समय देव नीचे आया उस समय सनतकुमार अपनी व्यायामशाला में लँगोट पहन कर व्यायाम कर रहे थे। पूरा शरीर धूल-धूसरित था, लेकिन उस धूल-धूसरित शरीर में भी अप्रतिम सौन्दर्य का दर्शन हुआ। देव मुग्ध हो गया। कहा- जैसा देवराज कह रहे थे, यह तो उससे भी अधिक सौन्दर्य का धनी है। देव प्रकट हुआ। उसने सनतकुमार की सराहना की और कहा- सचमुच इस धरती पर सबसे श्रेष्ठ रूप और लावण्य के तुम धनी हो। इस धरती पर तुम जैसा रूपवान् और कोई नहीं है। इतना सुनना था कि सनतकुमार चक्रवर्ती के मन में अपने रूप का गर्व जागृत हो गया। चक्रवर्ती ने कहा- आपके देवराज ने जो कहा था सो तो ठीक है, लेकिन आप अचानक आ गये, अभी तो मैंने अपना प्रसाधन भी नहीं किया और कुछ भी पहना नहीं है। धूल-धूसरित तन और केवल लँगोट में, अगर आप मेरा असली रूप देखना चाहते हो तो आप मेरे दरबार में आओ। अब क्या था। सनतकुमार चक्रवर्ती सज-सँवर कर दरबार में पहुँचा और वह देव भी चक्रवर्ती के रूप मोह में वहाँ उपस्थित हो गया। लेकिन यह क्या? चक्रवर्ती के सजे-सँवरे रूप को देखकर देव ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की, चुपचाप खड़ा रहा। चक्रवर्ती के मन में बड़ी उथल-पुथल मच गई कि क्या बात है? यह कुछ बोल क्यों नहीं रहा, एकदम मौन क्यों है? चक्रवर्ती ने इस मौन को भंग करते हुए पूछा- कहो, तुम कुछ कह क्यों नहीं रहे

हो? देव ने कहा- चक्रवर्ती क्या बताऊँ, अब मेरे पास कहने लायक कुछ बचा ही नहीं। चक्रवर्ती को बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले-क्या तुम्हें मुझमें किसी सौन्दर्य का दर्शन नहीं हो रहा है। देव ने कहा- चक्रवर्ती जो रूप मैंने तुम्हारा पहले देखा था, वह पता नहीं कहाँ विलीन हो गया। जिस रूप की मैं प्रशंसा कर रहा था वह तो अब तुम्हारे भीतर बचा ही नहीं है। इतना ही होता तो कोई बात नहीं थी, अब तो तुम्हारे रूप में भी मुझे कुछ विद्रूपता दिखलाई पड़ रही है। चक्रवर्ती स्तब्ध हो गया, उसका चेहरा एकदम पीला पड़ गया। चक्रवर्ती ने कहा- क्या कह रहे हो? देव ने कहा- राजन्! आप एक काम करो, आप एक ग्लास पानी मँगाओ। एक ग्लास पानी मँगाया गया और चक्रवर्ती से कहा इसमें थूकें, ज्यों ही चक्रवर्ती ने उस पानी में थूका तो चक्रवर्ती ने देखा कि उस पानी में कीड़े बिलबिला रहे हैं। उस कंचनमयी काया में अब कुष्ट के कीटाणु आ गये हैं। अब कोढ़ फैलने वाला है। चक्रवर्ती हतप्रभ रह गया। उसने सोचा किस रूप का अभिमान करूँ? जो थोड़ी देर पहले कामदेव-सा रूप था, अब वही कोढी का स्वरूप पा गया। चक्रवर्ती को रूप की नश्वरता का बोध हुआ, शरीर की अशुचिता का भान हुआ। उसने कहा- ठीक है, मैं कोढ़ को ही ठीक करने नहीं, बल्कि भवरोग को दूर करने निकलूँगा। चक्रवर्ती वहीं विरक्त हो गया और दिगम्बरत्व को धारण कर लिया।

तैरना सीखो

एक बार एक व्यक्ति अपने मित्र के साथ नदी तैरने के लिए गया। पहला तैराक था। दूसरे को तैरना नहीं आता था। जैसे ही दूसरे ने नदी में पैर रखा कि उसका पाँव फिसल गया। जैसे तैसे बचकर बाहर आया और बाहर आकर कहता है कि- कसम भगवान् की। जब तक मैं तैरना न सीख जाऊँ, तब तक पानी में पैर नहीं डालूँगा। पहले व्यक्ति ने कहा- ठीक कहते हो। क्या रेत में तैरना सीखकर तुम पानी में उतरोगे? अरे भाई! तैरना सीखना चाहते हो तो पानी में पाँव तो रखना ही पड़ेगा। पानी में उतरे बगैर आज तक कोई तैराक नहीं बन सका इसलिए अध्यात्म की साधना में उतरे बिना आज तक मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

रास्ता चलने से कटता है

एक संत थे, पद यात्रा करते हुए जा रहे थे। कुछ रास्ता भटक गये। काफी देर बाद एक ग्रामीण व्यक्ति मिला, सीधा-सादा किसान था। उन्होंने उससे कहा- हमें अमुक गाँव जाना है, कितनी दूर है? कितनी देर में पहुँच जाऊँगा? किसान ने कहा- आपके गन्तव्य की दूरी यहाँ से इतनी है, और आप आराम से पहुँच जाओगे। दोनों साथ-साथ चल रहे थे, पर उन संत के मन में बड़ी उथल-पुथल थी। उनके मन में कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उन्होंने पूँछा- देखो भाई, तुम कह तो रहे हो कि मैं पहुँच जाऊँगा, पर साँझ ढ़लने के बाद मैं चलता नहीं हूँ, तुम बोल रहे हो दो मील दूर है, दो मील से ज्यादा दूर तो नहीं। हाँ महाराज! दो ही मील दूर है। देखो, गाँव के लोगों का माईल बड़ा लम्बा होता है। लेकिन महाराज आप समय पर पहुँच जायेंगे और थोड़ा आगे जाने के बाद उन संत ने ग्रामीण से फिर पूछा- भाई तुम ठीक-ठीक बताओ, रात तो नहीं हो जायेगी। रास्ते में अंधेरा तो नहीं हो जायेगा? उस व्यक्ति ने झुंझला कर जबाव दिया- हुजूर, रास्ता चलने से कटता है, बात करने से नहीं। उस संत ने अपने संस्मरण में लिखा कि उस साधारण किसान के एक वाक्य का असर मेरे जीवन पर असाधारण रूप से पड़ा। रास्ता चलने से कटता है, यह बात ध्यान रखो।

अभाव की कीमत

चौबीसों घंटे श्वॉस आती-जाती है, पर हम तब तक उसकी कीमत को नहीं पहचानते, जब तक सांस अवरुद्ध नहीं हो जाती। सांस लेने में तकलीफ होने लगती है, तब डाक्टर के पास जाकर ऑक्सीजन लगवाते हैं।

मुँह में बत्तीस दाँत हैं, चौबीस घंटे में एक बार भी जीभ वहाँ नहीं जाती। उसमें से एक दाँत बाहर आ जाए तो चौबीसों घंटे जीभ वहीं जाएगी। क्या बात है? जब तक दाँत था, तब तक जीभ वहाँ नहीं गयी। अब जीभ क्यों जा रही है? क्योंकि दाँत के अभाव का अहसास हो रहा है। सद्भाव जब तक होता है, तब तक उसका मूल्यांकन नहीं करते। जब कोई चीज छूटने लगती है तब हमें समझ में आती है, यह चीज कितनी कीमती थी।

खुलती नहीं आँख अलसाई

एक घर में चोर घुस आया। आहट सुनकर पत्नी जाग गयी। पत्नी ने इधर-उधर देखा, कुछ चोर घर में आ रहे हैं। उसने पति को जगाया। कहा- देखो, घर में चोर आ गये। उठो जल्दी। पति ने नींद में ही ऊँघते हुए कहा- ऊँह, उठता हूँ। थोड़ी देर बाद पत्नी ने कहा- देखो तो, अपने मुख्य कक्ष में प्रवेश कर रहे हैं। उठ जाइए। पति कहता है- हूँ, उठता हूँ। पत्नी टकटकी लगाए देख रही थी। बोली- देखो, मुख्य कक्ष में प्रवेश कर गये, तिजोरी खोल रहे हैं, उठिए। हाँ....., उठता हूँ। देखो वे अपना सारा धन बटोर रहे हैं। अब भी आप उठ जाइए। उठता हूँ ना। देखो, सब माल लेकर जाने वाले हैं, अब भी उठ जाओ। चिल्ला दो, पड़ोसियों को जगा दो, अपना माल बच जाएगा। हाँ, उठता हूँ। तब तक चोर बाहर निकलने को हुए। फिर बोली- देखो, वह दरवाजे से बाहर निकल रहे हैं, अब भी आप कुछ कर लो।

थोड़ी देर बाद पति उठता है, तब तक चोर जा चुके थे। उसने पूछा- कहाँ हैं चोर? बोली अब जागने से कोई फायदा नहीं। आप तो सो जाइये। जो होना था सो हो गया। जब सब कुछ खो गया, तब जागकर भी पाओगे क्या?

मनुष्य पर भी मोह का कुछ असर ऐसा ही है कि सब कुछ गँवा रहा है और मूकदर्शक बना बैठा है।

इच्छाओं की पूर्ति,
इच्छा तृप्ति का साधन नहीं है।
इच्छाओं पर नियन्त्रण ही
इच्छा तृप्ति का साधन है।

संसार का बंधन

एक जगह सराय में ऊँटों की रेहड रुकी। बहुत सारे ऊँट थें। सब ऊँटों को बंधन में बाँध दिया गया। सारे ऊँट रात भर बैठे रहे। सुबह हुई सब ऊँटों का बंधन खोला गया। ऊँट रवाना हो गये लेकिन एक ऊँट उठा ही नहीं। वह बैठा का बैठा ही रहा। ऊँटों के मालिक ने कहा- क्या बात है, वह ऊँट उठ क्यों नहीं रहा। उसके बंधन खोलो। नौकरों ने कहा हमने उसका बंधन बाँधा ही नहीं। जिनके बंधन बाँधे थे सब खोल दिये। उस ऊँट पर बंधन बाँधा ही नहीं था तो खोलने की बात क्या है? मालिक बोला- क्यों नहीं बाँधा। रस्सी कम पड़ गई थी। तब ऊँट रात भर बँधा कैसे रहा? बस झूठ-मूठ उसके गले में हाथ फेरा कि रस्सी बाँध रहे हैं। मालिक ने कहा- जाओ उसके बंधन खोलो, तभी वह चलेगा। कैसे बँधन खोलें, बँधा ही नहीं है? अरे, जैसे हाथ घुमाकर बंधन बाँधा था, वैसे ही हाथ घुमाकर बँधन खोलो। नौकर गये ऊँट की गर्दन पर उसी तरह से हाथ फेरा, जिस तरह सभी को खोला गया था, तो वह ऊँट तुरन्त ही उठ गया।

यही है तुम्हारे बँधन का हाल। जैसे झूठ-मूठ की रस्सी बाँध दी गई तो ऊँट अपने को बँधा समझता है, ऐसे ही संसार का प्राणी अपने घर-परिवार या संसार के सम्बन्ध में इन सबसे अपने आपको बँधा महसूस करता है।

प्रेम और वात्सल्य सामाजिक जीवन की मूल चेतना है।

प्रयोग बिना ज्ञान अधूरा

एक जिज्ञासु किसी संत के पास पहुँचा और उसने संत से उपदेश माँगा। बहुत पहुँचे हुए संत थे। उन्होंने कहा- बताओ, हिंसा करनी चाहिए? उसने कहा- नहीं, गलत है। संत ने कहा- झूठ बोलना चाहिए? उसने फिर कहा- नहीं बुरी बात है। चोरी, कुशील तथा अन्य दुष्कर्म के बारे में भी संत ने कहा तो उसने कहा सब गलत हैं। अहिंसा परम धर्म है। सत्य सृष्टि का सार है। जीवन का आधार है। ब्रह्मचर्य सब धर्मों का सार है। साधना का मूलाधार है और संतोष तो परम धर्म है।

फिर संत ने कहा- क्रोध, मान, माया और लोभ करना चाहिए?

व्यक्ति ने कहा- सब बुरी बला हैं। क्षमा आत्मा का स्वभाव है, मृदुता, सरलता ये जीवन के गुण हैं। शुचिता, पवित्रता हमारे जीवन के लिए अनुकरणीय है।

संत थोड़ी देर के लिए चुप हो गये। फिर बोले तुम्हें क्या उपदेश दें? तुम तो सब जानते हो, सब पता है। अपने प्रवचनों में भी मैं यही बात कहूँगा। सब पता होने के बाद भी यदि तुमने यह सब नहीं छोड़ा तो मेरे कहने पर क्या होगा?

ज्ञान तब तक कोरा ज्ञान है जब तक हम उसे सिर्फ ज्ञान तक सीमित रखते हैं। वही ज्ञान बोधि में परिवर्तित हो जाता है तो उसे आचरण में ढाल लेते हैं। ज्ञान को आचरण में ढालने का प्रयास करो।

महान बनने की कामना करो,
महत्ता पाने की नहीं।

जीवन के चार चरण

एक धनाढ्य सेठ परिस्थिति की मार खाकर एकदम दरिद्र बन गया। जिसके यहाँ से कोई याचक खाली नहीं लौटता था। वही सेठ दाने-दाने को मोहताज हो गया। घर में एक दाना भी नहीं बचा। पत्नी ने सेठ को प्रेरित किया कि आप कहते थे यहाँ का राजा आपका मित्र है। राजा के साथ आपकी अभिन्नता रही है। प्रगाढ़ रिश्ता है। आप ऐसी आपदग्रस्त स्थिति में राजा के पास क्यों नहीं जाते? मुझे पक्का विश्वास है कि ऐसी स्थिति में राजा जरूर मदद करेंगे।

सेठ ने कहा- अरे पगली! ऐसी फटेहाल हालत में राजा मुझे पहचानेगा भी? नहीं, मैं जानती हूँ कि राजा बड़ा उदार है और अपने मित्रों-बन्धुओं से प्रेम रखने वाला है, आप निश्चिंत रहिए, राजा आपको पहचानेगा और बिना माँगे मदद देगा।

पत्नी की प्रेरणा और परिस्थितियों की पुकार से प्रभावित होकर न चाहते हुए भी उसने राजा से मिलने का मन बना लिया। राजमहल में पहुँचा। राजा के पास अपना संदेश भिजवाया। राजा अपने बचपन के मित्र का नाम सुनते ही आसन से दौड़ा आया। उसे छाती से लगा लिया तथा वैस ही सत्कार किया जैसा कि कभी श्रीकृष्ण ने सुदामा का किया था। दोनों भाव-विभोर होकर मिले। राजा उसकी हालत को देखकर सब कुछ समझ गया। राजा ने कहा- तुम्हारी स्थिति मैं समझ गया हूँ। तुम मेरे बचपन के मित्र हो। तुम एक काम करो- मेरे पास धन-दौलत की कमी नहीं है, कल सुबह आना। तुम्हारे लिए मैं हीरों का खजाना खोल दूँगा। तुम जितना चाहो उतने हीरे-जवाहरात यहाँ से ले जाना। तीन घंटे का समय मैं तुम्हें देता हूँ।

अब क्या था। अगले दिन आया। जैसे ही हीरे का खजाना खोला गया, हीरे की चमक देखकर उसकी आँखें चौंधिया गयी। रत्नों की जगमगाहट से वह अचकचा गया कि अब क्या करूँ? बेशुमार सम्पत्ति और तीन घंटे का समय बहुत

कम है। क्या करूँ? एक बार उसने पूरे खजाने की ओर दृष्टि दौड़ाई। उसे एक कोने में रत्नों के खिलौने दिखाई पड़े। मन में विचार आया तीन घंटे का समय मुझे मिला है। यहाँ से दो चार नग ही उठाऊँगा तो मेरे जीवन भर का काम चल जायगा। ज्यादा सम्पत्ति जोड़ने से क्या लाभ? जब पूर्व का जोड़ा हुआ नहीं बचा तो इसे ले जाकर क्या करूँगा?

क्यों न मैं थोड़ी देर इंतजार करूँ और इस खिलौने से खेलने का लुफ्त उठा लूँ क्योंकि यहाँ दुबारा तो आने को नहीं मिलेगा। कहते हैं कि वह उस खिलौने से खेलने में इस तरह लीन हो गया कि उसे पता ही नहीं चला कि तीन घंटे कब बीत गए। उसे तो तब मालूम हुआ जब उससे कहा गया कि महानुभाव! आपका समय पूरा हो गया, अब बाहर आ जाएँ।

क्या? समय हो गया। मैंने तो कुछ किया ही नहीं। जो तब तक नहीं ले सका वह अब क्या लेगा? अब आपको इजाजत नहीं। आप बाहर आ जाइए। बेचारा बहुत निराश हुआ। बाहर आया, राजा को मालूम हुआ कि यह समय का कोई लाभ नहीं उठा पाया।

राजा ने फिर अपनी तरफ से कहा- कल तुम्हें फिर मौका देता हूँ, पर इस बार तुम्हें सोने के खजाने में भेजा जाएगा, तीन घंटे का समय है। तुम्हें जो लेना हो ले जाना। दूसरे दिन आया, देखा सोने का खजाना भरा था। वह खजाने की ओर लपका। तभी उसकी नजर एक घोड़े पर पड़ी। यह वही घोड़ा था, जिस पर बैठकर वह अपने मित्र के साथ सवारी किया करता था। घोड़े को देखकर उसके भीतर फिर से जवानी का जोश आ गया । उसने सोचा तीन घंटे का समय तो बहुत है, और यह घोड़ा तो बड़ा विश्वासपात्र है, क्यों न मैं थोड़ी देर इसकी सवारी का आनन्द ले लूँ। वापस आकर जो मुझे लेना होगा वह ले लूँगा।

यह सोचकर उसने घोड़े की लगाम खींची और घोड़ा हवा से बातें करने लगा। तेजी से वह घोड़ा बहुत दूर निकल गया। जब लौटकर आया तक तक 6 घंटे बीत चुके थे। वह अभागा अब की बार भी कुछ लाभ नहीं ले सका।

राजा ने कहा- मैं तुम्हें तीसरा और आखिरी मौका कल देता हूँ। इसका

तुम लाभ लेना चाहो तो ले लेना नहीं तो फिर तुम जानो। तीसरा मौका चाँदी के खजाने में होगा। अगले दिन वह चाँदी के खजाने में गया और खजाने में ऐसे टूट पड़ा जैसे कोई भूखा भोजन पर टूटता है। बहुत सारी चाँदी बटोरकर वह निकलने को हुआ तभी दरवाजे के बगल में उसे एक छल्ला दिखाई पड़ा। उस छल्ले के नीचे कोई नोटिस लिखा था 'कृपया मुझे न छुएँ, छुएँ तो सुलझाकर ही जाएँ।'

निषेध में जिज्ञासा होती है। सोचा साधारण सा छल्ला है। काम तो मैंने कर लिया है। अब भी दो घंटे का समय बाकी है। क्यों न इसे देखें? इसकी क्या खासियत है? उसने जैसे ही उस छल्ले में हाथ डाला, उसका हाथ उलझ गया। बुरी तरह उलझ गया और वह दूसरे हाथ से उसे सुलझाने में लग गया। छल्ले से हाथ कैसे छुड़ाएँ? छल्ला छूट नहीं पाया और समय पूरा हो गया। उससे कहा गया- महानुभाव! आपका समय पूरा हो गया।

बेचारा अपनी किस्मत को कोसते हुए निराश मन से घर वापस आ गया। वाकई में अक्सर यही होता है, लोग गलती खुद करते हैं और दोष किस्मत को देते हैं। दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो किस्मत को ही कोसने के आदी हैं। ग्रह, नक्षत्र को दोष देते हैं। खुद की प्रवृत्ति को दोष नहीं देते हैं। उस सेठ के साथ भी यही हुआ।

पत्नी को मालूम पड़ा। उसने कहा- चलो तीन मौके आपको राजा ने अपनी तरफ से दिए। मेरी आपसे प्रार्थना है आप एक बार फिर राजा के पास जाओ और मिलो। उनसे एक आखिरी मौके के लिए कहना- पत्नी के आग्रह से प्रेरित होकर वह आखिरी बार राजा के पास गया। राजा ने कहा- ठीक है, तुम्हें एक आखिरी मौके के रूप में तीन घंटे का समय दिया जाएगा और ताँबे का खजाना दिया जाएगा।

दूध का जला छाँछ भी फूँककर पीता है। उसने तय कर लिया कि अब की बार वह कोई गलती नहीं करेगा। ताँबे के बारे में सोचकर वह अपने साथ 10-20 सीमेंट की बोरियाँ रख ले गया। खजाने में जाकर वह टूट ही पड़ा। सारी बोरियों को भरकर सिल लिया। ऐसा करने में उसे लगभग एक घंटा लगा पर वह

काफी थक गया। वृद्धावस्था और परिस्थिति की मार दोनों ही वजह से उसकी कमर दुखने लगी थी। कमर सीधी करने के लिए जैसे ही झुका उसे सामने बिस्तर लगा हुआ दिखाई दिया। उसने सोचा राजा मेरा कितना शुभचिन्तक है, उसे मालूम था। कठिन परिश्रम से वह थक जाएगा। इसलिये बिस्तर लगा के रखा है। उसने देखा अभी तो दो घंटे हैं। क्यों न थोड़ा सा सुस्ता लूँ? वह बिस्तर पर सो गया। उसकी नींद तब टूटी जब तीन घंटे बीत चुके। उसे खाली ही आना पड़ा।

आप सबको हँसी आ रही होगी, उस व्यक्ति की मूर्खता पर? क्या आपको मालूम है यह किसकी कहानी है? यह हमारी, तुम्हारी, सबकी कहानी है।

हमारे मनुष्य जीवन के चार-पन हैं- बचपन, यौवन, प्रौढावस्था और वृद्धावस्था। ये चारों पन हमें एक श्रेष्ठ अवसर के रूप में मिले है। सबसे पहला अवसर बचपन का है, जो रत्नों जैसा कीमती होता है, लेकिन कहते हैं-

बचपन गया खेलकूद में, तरूणी संग तरूणाई।
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापन है, कैसे बचोगे भाई॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरूण समय तरूणी रत रह्यो,
अर्द्धमृतक सम बूढापनो, कैसे रूप लखै आपनो॥

जब बचपन गया तब रत्नों जैसा कीमती वक्त यूँ ही बिता दिया। जवानी मिली तो उसे घोड़े पर सवार होकर गुजार दिया। जवानी का जोश यूँ ही गँवा दिया। अर्थात् विषयों की घुड़दौड़ में ही हम अपना सारा समय बिता देते हैं और जीवन में सोने जैसा कीमती क्षण हमारे हाथ से निकल जाता है।

इसके बाद व्यक्ति गृहस्थी में प्रवेश करता है। प्रौढ़ावस्था आ जाती है, अपने साथ अपनी बीवी तथा बच्चों का भार भी आ जाता है। गृहस्थी में उलझता जाता है। वह छल्ला और कोई नहीं, गृहस्थी का छल्ला था। उस पर लिखा था- मुझे न छुएँ, अन्यथा उलझ जाऐंगे अगर उलझे तो सुलझकर ही जाएँ। अतः जो गृहस्थी से दूर हैं वे बचे हैं और एक बार जिसने हाथ डाला फिर जिंदगी भर उसे सलटाते हुए ही वह गुजर गया। हाथ एक बार जाने के बाद फिर नहीं निकलता।

संत कहते हैं- बेहतर है, उसमें उलझो ही मत और यदि कदाचित् उलझ गए हो तो उसे सुलझाने में दूसरे हाथ को मत उलझाओ। एक ही हाथ को उलझा रहने दो तथा दूसरे से जितना माल निकाल सको, निकाल लो। उसी में मालामाल हो जाओगे। जो गृहस्थी की उलझनों में उलझ कर रह जाते हैं वे कभी कल्याण नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में दूसरे हाथ को परमार्थ में लगाना चाहिए। जिससे उलझनों में उलझने का वक्त कम मिले, परमार्थ करने से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।

चौथी अवस्था में बिस्तर। बुढ़ापावस्था में तो सारे समय सोए-सोए ही गुजारना पड़ता है। पंडित जगन्मोहनलाल शास्त्री बहुत अच्छी बात कहा करते थे- 'बूढ़े को अर्द्धमृतक क्यों कहते हैं?' उन्होंने कहा- मृतक को चार उठाते हैं और बूढ़े को दो इसलिए वह अर्द्धमृतक है।

वृद्धावस्था भी एक जर्जर अवस्था है। जहाँ मनुष्य चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता, शरीर से शक्य नहीं रहता। मन की भावनाएँ मन ही में रह जाती हैं।

भेदविज्ञान का प्रतीक श्रीफल

कच्चा नारियल, कच्चा है और पक्का नारियल पक्का है। परिपक्क जो होता है वह परिपूर्ण होता है। आप देखो, कच्चे नारियल को फोड़ो तो दो भाग हो जाएगे। अगर सूखे नारियल को फोड़ो तो साबुत नारियल आएगा, अखण्ड आएगा। तो भगवान के चरणों में परिपक्क को चढ़ाओ, जो कभी टूटे नहीं, कभी नष्ट न हो और वह जो आप सूखा नारियल चढ़ाओगे तो वह बजता है। यह भेदविज्ञान का प्रतीक है। इसे श्रीफल भी कहते हैं।

आओ समझें कर्म-सिद्धान्त

कर्म बंध का संबंध कैमरें की तरह है। हम जैसे अभी जो बोल रहे हैं। वह सामने सब कैमरे में रिकॉर्ड हो रहा है। जिस क्रम में हम बोल रहे हैं उसी क्रम से रिकॉर्ड हो रहा है। जब उसकी कैसेट को देखे तो हमें कुछ भी दिखाई नहीं देगा। लेकिन जब उसको सिस्टम में लगाकर प्ले करेंगे तो सब दिखाई देगा और सुनाई भी पड़ेगा। जो सिस्टम इस कैमरे में है, वही सिस्टम हमारे साथ है। हम अपने मन से, अपने वचनों से और अपने शरीर से 24 घण्टे अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ करते रहते हैं। जैसे प्रवृत्तियाँ करते हैं वैसे कर्म के संस्कार हमारी आत्मा में अंकित हो जाते हैं। वे ही कर्म के संस्कार कालान्तर में अच्छा और बुरा फल प्रदान करते हैं। जब हमारी सोच, वाचिक प्रवृत्ति और शारीरिक प्रवृत्तियाँ यानि हमारे मन वचन काय की क्रियाएं ठीक होती हैं तो उससे अर्जित होने वाले कर्म के संस्कार अच्छे होते हैं। जिसे हम शास्त्रीय भाषा में पुण्य कर्म का आस्रव कहा करते हैं और इसके विरुद्ध हमारे मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्तियाँ होती हैं, तो उससे पाप कर्म का आस्रव होता है। पाप कर्म हमारी आत्मा से बँधते हैं तो उसका बुरा परिणाम मिलता है और पुण्य कर्म का परिणाम अच्छा मिलता है। यह ओटोमेटिक सिस्टम है। हम यहाँ जैसा एक्शन कर रहे हैं वह उसमें रिकॉर्ड हो रहा है। ठीक ऐसी ही जैसी हमारी प्रवृत्ति है वैसे संस्कार हमारी आत्मा से जुड़ रहे हैं। यहाँ तो आपके पास सिस्टम है कि जो आपको अच्छा लगे उसे आप रिवर्स करके देख सकते हैं। जो अच्छा न लगे उसे फॉर्वड कर सकते हैं। पूरे के पूरे डाटा को डिलीट करने की व्यवस्था आपने बना रखी है। लेकिन भीतर के साथ ऐसा कोई संबंध नहीं है कि अच्छे दिन को बार-बार रिवर्स कर लो, बुरे दिन आये तो फॉर्वड कर लो और ज्यादा हो तो उसे डिलीट कर लो। ऐसा कोई सिस्टम नहीं है। एक अन्तर और है यहाँ, बोलने वाला कोई और है, रिकॉर्ड करने वाला कोई और है। रिकॉर्डिंग किसी और की हो रही है और रिकॉर्ड करने वाला कोई और है। लेकिन भीतर में उसकी रिकॉर्डिंग हो रही है वह खुद रिकॉर्ड कर रहा है। ओटोमेटिक रिकॉर्ड का सिस्टम है। यहाँ एक अंतर और है, जिस समय रिकॉर्डिंग

है उस समय प्ले नहीं है। जिस समय प्ले है उस समय रिकॉर्डिंग नहीं है। लेकिन यहाँ रिकॉर्डिंग भी हो रही है और प्ले भी साथ-साथ चलता आ रहा है। यह सब ओटोमेटिक है। किसी अन्य की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा का हमारे साथ संबंध ऐसा बना हुआ है। यह परमात्मा कोई और शक्ति नहीं है हम ही अपने में परमात्मा हैं। हम ही अपने स्वयं के नियंता हैं। किसी बाहर की शक्ति की इसमें कोई भूमिका नहीं है। हमारा लेखा-जोखा रखने वाला कोई और नहीं है। कहीं हमारी कोई और फाइल नहीं है जो हमारा हिसाब किताब रखे। सब हमारे भीतर है इसलिए अपना उद्धार करना चाहते हो तो अपनी करनी को सुधारो।

जोड़ने के लिए तोड़ना

एक गाँव में एक पुराना मन्दिर था। थोड़ा जीर्णशीर्ण हो गया था। उसका गाँव के लोग जीर्णोद्धार कराना चाहते थे। उसके लिये गाँव की पूरी पंचायत बैठी। रात भर पंचायत चली और तीन सूत्रिय प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया। पहला प्रस्ताव सर्वसम्मति से यह हुआ कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया जाय। दूसरा प्रस्ताव, चूँकि यह मन्दिर प्राचीन है, इसलिये इसकी प्राचीनता के संरक्षण के लिये कोई भी नया मटेरियल न लगाया जाये और तीसरा प्रस्ताव जब तक इस मन्दिर का निर्माण न हो जाये इसकी एक ईंट भी न हिलायी जाये। हमारे समाज में बुद्धिजीवियों की कमी नहीं। ऐसे में क्या होगा? कुछ नहीं होगा। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है वहाँ वैसा होता है। यदि कहीं कोई मन्दिरों में टूट-फूट करना पड़ रही है और उससे अच्छा निर्माण हो रहा है तो करो। उस जगह मन्दिर बना और आलीशान मन्दिर देखते ही हृदय की विशुद्धि बढ़ती है। एक बार जब कुछ टूटता सा दिखता है तो मन को तकलीफ होती है। यदि अच्छे उद्देश्य से किसी चीज को तोड़ा भी जाये तो उसे तोड़ना नहीं मानो। उसे जोड़ना मानो।

आशावादी बनिये

इब्राहिम लिंकन के बारे में आपने सुना होगा। जो अमेरिका का राष्ट्रपति बना। उस व्यक्ति के जीवन की कहानी आप पढ़ोगे तो आपको बड़ा आश्चर्य होगा। वह एक ऐसा शख्य था, जिसने लगातार विफलता का मुँह देखा। विफलता का सामना किया। लेगिसलेचर के इलेक्शन से लेकर के उपराष्ट्रपति तक के चुनाव की हार का सामना करने वाला। दो बार व्यापार में लम्बे नुकसान का सामना करने वाला। पत्नि के वियोग का सामना करने वाला और एक्सीडेन्ट की पीड़ा का सामना करने वाला, इब्राहिम लिंकन हिम्मत नहीं हारा और नतीजा यह निकला कि 18 बार हार करके जीता तो सीधा अमेरिका का राष्ट्रपति बना। आशावादी बनिये।

जीते जी मारता है डिप्रेशन

एक व्यक्ति बहुत खूबसूरत था। लेकिन उसके डिप्रेशन का कारण सुनकर आप आश्चर्य करेंगे। उसके चेहरे पर हल्की सी एक शिकन आयी 45 वर्ष की उम्र में। उसने कहा- यह भी कोई जिंदगी है। मेरा तो सारा सौन्दर्य चला जायेगा। डिप्रेशन में आ गया। एकदम सोसाइटल मेन्टलिटी में आ गया। उसके पीछे उसका एक बेटा इंजीनियरिंग की पढ़ाई छोड़कर 24 घंटा उसकी देखभाल में लगा रहा। 2-3 साल तक उसकी पहरेदारी में लगा। हाल यह था कि टायलेट में भी जाता तो दरवाजा बन्द नहीं करने देता। लेकिन एक दिन मौका पाकर उसने सल्फास खाकर आत्महत्या कर ली।

ईर्ष्या का फल

एक बार एक श्रीमंत के यहाँ दो विद्वान पधारे। दोनों बड़े ,ख्यातिप्राप्त थे। श्रीमंत ने उनका बड़ा अच्छा आतिथ्य किया। रात भर सोने के बाद जब सुबह उठे, एक विद्वान अपनी नित्य क्रिया से निवृत होने के लिए गये तो सेठजी ने सोचा समय का सदुपयोग करना चाहिए। उन्होंने दूसरे विद्वान से पहले विद्वान की प्रशंसा शुरू कर दी और कहा- ''पंडित जी हमने सुना है कि डाक्टर साहब बड़े विद्वान है, बनारस में बड़ा नाम है उनका, पी.एच.डी. भी की है, अनेक पुस्तकों के संपादक हैं, कई लोगों को उन्होंने अपने निर्देशन में पी.एच.डी. की उपाधियाँ भी दिला दी हैं और हाँ, बहुत अच्छा प्रवचन भी देते हैं, बड़ा गहरा ज्ञान है, बड़े अनुसंधाता हैं, क्या विचार है आपका? इतना सुनना था कि उनका चेहरा बदल गया। एक विद्वान दूसरे की प्रशंसा सुन ले तो वह विद्वान कैसा! उसने कहा, ''क्या बोलते हो साहब! चार किताबें क्या पढ़ लीं, लोगों को मूर्ख बनाता है। पी.एच.डी. क्या की, उसने तो नकल की है। दस किताबों के अंश निकाल कर एक नई किताब बना ली। आपको पता नहीं, किसी एक पुस्तक का कोई अंश निकालना साहित्यिक चोरी है और दस पुस्तकों के अंश निकालकर ग्याहरवीं पुस्तक बनाना शोध है पी.एच.डी. है। उसे बिल्कुल कुछ आता जाता नहीं है। आप बुद्धू मत बनो वह तो निरा बैल है।''

श्रीमंत को सुनने में तो अच्छा नहीं लगा पर वे बड़े पहुँचे हुए थे। उन्होंने सब कुछ सुन लिया। इस बीच वे विद्वान फ्रेश होकर आ चुके थे। अब इनकी बारी थी। यह फ्रेश होने के लिए गये। श्रीमंत ने दूसरे विद्वान की प्रशंसा करना शुरू कर दी- ''पंडितजी हमने सुना है कि पंडितजी की बड़ी अच्छी पकड़ है, संस्कृत और न्याय में पारंगत हैं। काशी में उनका बड़ा नाम है। उनके पढ़ाए हुए अनेक शिष्य बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं। देश में बहुत सारे विद्वान उनके नाम से जलते हैं। आपका क्या ख्याल है उनके संबंध में? विद्वान ने कहा- ''कहाँ की बात सुन ली भैया, यह सब तो दुनिया को बुद्धू बनाने के चक्कर हैं। उसको कुछ आता-जाता नहीं, यह आदमी निपट गधा है।''

एक निरा बैल दूसरा निपट गधा, अब तक दूसरे पंडित जी भी फ्रेश होकर आ गये थे। जब दोनों बैठ गये तो सेठ जी को अब दोनों के लिए नाश्ता लेने जाना था। बस क्या था, सेठजी एक टोकने में भूसा और एक टोकने में घास लेकर उनके सामने प्रस्तुत हो गये। उन्होंने कहा- ''पंडितजी, इन्हें स्वीकार कीजिए।'' यह देखना था कि दोनों आग बबूला। श्रीमंत ने जवाब दिया कि, ''पंडितजी, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं। आज तक मैंने पंडितों के वचनों को प्रमाण माना है और हमेशा पंडितों की ही बात को मान कर चला हूँ। मैंने अपनी तरफ से कुछ नहीं किया। आप में से एक ने दूसरे को बैल बताया, दूसरे ने एक को गधा बताया तो मैंने सोचा-बैल के लिए भूसा और गधे के लिए घास से बढ़कर अच्छा और कौन-सा नाश्ता हो सकता है।'' दोनों का मुँह उतर गया।

प्रार्थना का प्रभाव

अमेरिका में 125 मेडिकल युनिवर्सिटी हैं। वहाँ प्रार्थना पर बहुत प्रयोग किये गये। 10-10 रोगियों के तीन अलग-अलग ग्रुप बनाये। दस के लिए प्रार्थना की गई। दस के लिए नकारात्मक भावना की गई। और दस के नॉर्मल ट्रीटमेंट किया गया। जिनके लिए प्रार्थना की गई, उनके स्वास्थ्य के सुधार की दर 200 प्रतिशत बढ़ गई। जिनके लिए नकारात्मक भावना बनाई गयी उनकी बीमारी ओर गहरा गई। जिनको नॉर्मल ट्रीटमेंन्ट दिया गया उनकी ग्रोथ नॉर्मल रही। लम्बे प्रयोग के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे, कि प्रार्थना का मनुष्य की सेहत पर प्रभाव पड़ता है। उसमें सबसे चौंकाने वाला तथ्य यह था कि जिन लोगों के लिये प्रार्थना की जा रही थी उनको यह पता नहीं था कि मेरे लिये कोई प्रार्थना कर रहा है और जो लोग प्रार्थना कर रहे थे उन्हें यह पता नहीं था कि हम किन चेहरों के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। लेकिन पन्द्रह वर्ष के प्रयोगों के बाद यह निष्कर्ष निकला और उसका नतीजा यह है कि अमेरिका के 125 मेडीकल युनिर्वसिटीज में 85 के पाठ्यक्रम में प्रार्थना को जोड़ दिया गया और अब डाक्टर अपने प्रिस्क्रिप्शन में भी प्रार्थना लिखने लगे।

बुरे का फल

एक लोभी था दूसरा मत्सरी। दोनों ने एक बार एक देवी की आराधना की। आराधना से देवी प्रसन्न हुई और प्रकट होकर बोली, ''तुम दोनों की आराधना से मैं प्रसन्न हूँ। माँगो क्या चाहते हो? पर एक शर्त है- तुम दोनों में से जो पहले माँगेगा दूसरे को मैं उससे दुगुना दूँगी। इतना सुनना था कि लोभी ने सोचा यह तो बड़ा गड़बड़ हो जावेगा। मैं अगर पहले माँगता हूँ तो सामने वाले को दुगुना मिल जावेगा, तो ये मुझे सहन नहीं होगा। वह एकदम चुप हो गया कि माँगने दो इसको पहले और मत्सरी ने सोचा कि यह कैसे होगा, मैं पहले मागूँगा तो वह आगे निकल जावेगा, यह मुझसे सहन नहीं होगा। थोड़ी देर प्रतीक्षा के बाद दोनों ने कुछ नहीं बोला तो देवी झल्लाती हुई बोली- ''तुम लोगों को माँगना है तो माँगो नहीं तो मैं चली।'' तब मत्सरी सोचता है अच्छा यह लोभी, लोभ के कारण पहले नहीं माँग रहा है। ठहरो! इसके लोभ का मजा चखाता हूँ और उसने देवी से कहा क्या तुम ठीक कहती हो कि जो पहले माँगेगा दूसरे को उससे दुगना दोगी!''`` हाँ, मैं बिल्कुल दुगना दूँगी।'' तो उसने कहा- ''ठीक है देवी, यदि तुझे दूसरे को मुझसे दुगना देना है तो ऐसा करदे मेरी एक आँख फोड़ दे और मेरे घर के बाहर एक कुआँ खोद दे। इतना सुनना था कि लोभी आदमी देवी के चरणों में गिर पड़ा। बोला-माता ऐसा मत करना क्योंकि इसकी एक आँख फूटेगी तो मेरी दोनों ही फूट जाएँगी और घर के बाहर यदि दो कुएँ खुद जायेंगे तो मेरा क्या होगा इसलिए मेरे साथ ऐसा कभी नहीं करना। लेकिन देवी ने कहा तुम्हें तुम्हारी करनी का फल मिल गया अब मैं कुछ नहीं कर सकती और कहते हैं उसने 'तथास्तु' कहा। इसकी एक आँख फूटी, एक कुआँ खुदा, उसकी दोनों आँखें फूट गयीं। दो कुएँ खुद गये।

'यत् ध्यायते तद् भवति'। व्यक्ति जैसी भावना भाता है वैसा उसका जीवन बनता है।

वाणी का असंयम

एक पढ़े लिखे नवयुवक की शादी गाँव की एक अनपढ़ लड़की से हुई। लड़का ज्यादा पढ़ा-लिखा था। वह अपने आपको कुछ अधिक स्मार्ट मानता था। लड़की की पहली विदा हुई, वह अपने मायके पहुँची। पत्नी के वियोग में व्याकुल लड़का बिना पूर्व सूचना के अपने ससुराल पहुँच गया। पहुँचते ही उसने कहा-

''मैं आज पत्नी को लेने के लिए आया हूँ और कल ही मैं यहाँ से चला जाऊँगा। कल आपको विदा करना है।''

इस अप्रत्याशित बात को सुनते ही लड़की की माँ सिहर उठी, बोली- ''अभी-अभी आये हो, चार दिन हुए नहीं और बेटी को ले जाओगे? फिर अभी तो तुम्हारे ससुर भी यहाँ नहीं है, मैं कैसे विदा करूँगी। कोई है ही नहीं।''

''मैं तुम्हारे इन दकियानूसी विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। मैं आज आया हूँ और कल जाऊँगा। कल तुम्हें अपनी बेटी को विदा करना पड़ेगा।'' दामाद ने अशिष्टता से जवाब दिया।

दामाद के इस जवाब से सास को भी थोड़ा गुस्सा आ गया। यद्यपि सास को थोड़ा संयम रखना था पर वह अपने आपको सँभाल नहीं सकी और उसने आवेश में कहा-

''देखो! ज्यादा बातें मत बनाओ, अब कोई क्या कहेगा? विदाई के लिए सामान तक नहीं है। इसके पिताजी को आ जाने दो, सामग्री आ जायेगी, फिर मैं दो दिन बाद विदा कर दूँगी। आप भी रुको, दो दिन में क्या बिगड़ जाता है? दामाद का क्रोध और बढ़ गया। उसने बेरुखी से कहा- ''कल विदा करना है तो विदा करो, नहीं तो मैं तुम्हारी बेटी को यहीं छोड़कर चला जाऊँगा।'' जवाब सुनकर सास ने भी अपना आपा खो दिया और उसने कहा- ''तुझे जाना है तो चला जा, मैं समझ लूँगी कि मेरी बेटी विधवा हो गई।''

इतना सुनना था कि दामाद आग-बबूला हो गया और उसने कहा- ''ठीक है अगर तू समझती है कि तेरी बेटी विधवा हो गई तो अब मैं तेरी बेटी को विधवा करके ही छोड़ूँगा।'' वह कमरे से तीर की तरह भागा और आँगन के कुएँ में कूँदकर अपनी जान दे दी।

ये है वाणी का असंयम, उसने अपनी बेटी को विधवा बना ही दिया। एक बात जब व्यक्ति को लग जाती है तो एकदम हृदय में बिध जाती है इसलिए हमेशा संतुलन रखना चाहिए।

वाणी वीणा बने, वाण नहीं

चीन का दार्शनिक कनफ्यूसियस जब मरणासन्न था तो उसके शिष्यगण उसे घेरे हुए थे। उन्होंने कहा कि गुरुदेव! जाते-जाते कोई अंतिम शिक्षा हम सबको देते जाइये। कनफ्यूसियस बड़े ऊँचे दर्जे के दार्शनिक थे। उन्होंने अपना मुख खोला और अपने शिष्यों से पूछा- ''बताओ मेरे मुँह में क्या है?'' शिष्यों ने कहा- आपके मुख में जुबान है, एक भी दाँत नहीं है।'' कनफ्यूसियस ने पूछा कि क्या इसका कारण बता सकते हो? सारे शिष्य एक दूसरे का मुँह ताकते रहे, उनसे कोई उत्तर न सूझा, क्या कहें सिर्फ जुबान है दाँत क्यों चले गये। उनसे बोलते नहीं बना। जब सब निरुत्तर हो गये तो कनफ्यूसियस ने कहा- ''देखो दाँत बाद में आये और पहले चले गये। जीभ पहले आई और अभी तक बनी है। इसका सिर्फ एक ही कारण है- दाँत में कठोरता है, कड़ापन है इसलिए दाँत पहले चले गये। जीभ में लोच है, इसलिए जीभ आज भी बनी हुई है। यही मेरा तुम्हारे लिए अंतिम संदेश है कि जितना बने विनम्र बनो सरल व्यवहार रखो और अपनी जिह्वा में भी हमेशा लचीलापन बनाये रखो। यदि अपनी जीभ में सख्ती रखोगे तो तुम समाज में कभी स्थापित नहीं हो सकोगे और यदि तुम मानव समाज में हमेशा के लिए स्थापित होना चाहते हो तो अपनी जीभ में लोच लाने की आवश्यकता है। अपनी जीभ को हमेशा लचीली बनाये रखने की आवश्यकता है।''

बाप से बेटा सवाया

एक पिता बहुत धनाढ्य थे। उनका इकलौता बेटा था। बेटे की पिता के प्रति गहरी निष्ठा थी। शादी की गई, अच्छी बहू घर आई। बहूरानी एकदम आधुनिक विचाराधारा की थी। पिताजी काफी वृद्ध हो गये थे। बेटा चाहता था कि पिताजी अब घर पर ही आराम करें, घर की व्यवस्था देखें। अत: बेटे ने पिता से ऐसा ही अनुरोध किया, पिता ने भी उचित मानकर दुकान से निवृत्ति ले ली। अब पिताजी घर पर रहने लगे, घर का जो पहला कमरा था वहीं पिताजी रहने लगे। उनके घर पर रहने से बहूरानी को तकलीफ हो गई क्योंकि ससुर के घर पर रहने से उसकी स्वतंत्रता छिन गई। अब वह चाट के ठेले पर खड़े होकर चाट नहीं खा पाती। अब जहाँ चाहे अपनी सहेलियों से मिलने नहीं जा पाती थी। उसे बड़ी तकलीफ होने लगी। एक दिन अपने पति से उसने कहा- ''उस बुढ्ढे को कहाँ बिठा दिया! सारा दिन थूक-थूक कर पूरे आँगन को खराब कर देते हैं। दरवाजे पर जो भी आता है, उन्हीं से मिलना होता है। ''

आदमी कहाँ तक गिर जाता है, देखिये। बेटे ने सोचा कि बात तो ठीक कहती है, ऐसा करें इन्हें अंदर के कमरे में रख दें। उसने कहा पिताजी आप यहाँ रहते हो, धूल आती है। आपको खाँसी की बीमारी है, धूल से आपकी बीमारी और बढ़ेगी। आप ऐसा करें अंदर के कमरे में रहा करें ताकि आपका स्वास्थ्य भी ठीक रहे। अंदर का कमरा बेटे के बेडरूम के बिल्कुल बगल का कमरा था। दादाजी को खाँसी बहुत तेज चलती थी, रात-रात भर वह सो नहीं पाते थे और जब वह खाँसते थे तो बहूरानी डिस्टर्ब हो जाती थी। उसने अपने पति को समझाते हुए कहा कि देखो ये रात-रात भर खाँसते रहते हैं और न वह सो पाते हैं, न हम लोग सो पाते हैं। ऐसा करो इनको ऊपर के कमरे में पहुँचा दो। बेटे ने कहा- ''पिताजी वृद्ध हैं, बार-बार भोजन पानी के लिए कैसे नीचे आयेंगे।'' बोली- ''चिंता मत करो, तुम उन्हें ऊपर पहुँचा दो। इनकेभोजन की व्यवस्था वहीं कर देंगे। सारी व्यवस्था वहीं हो जायेगी। बेटा अपनी पत्नी की बातों में आ गया और पिता को उठाकर एकदम तीसरे मंजिल के कबाड़खाने वाले कमरे में रख दिया।

पिता ने कहा कि बेटे, मैं बार -बार नीचे कैसे उतरूँगा? तो बेटे ने समस्या का समाधान करते हुए एक घंटी रख दी कहा- ''पिताजी, आपको जब कभी किसी चीज की आवश्यकता हो यह घंटी बजा दिया करो, नीचे से कोई आयेगा और आपकी पूर्ति कर देगा।'' पिता के पास घंटी रख दी गई। बुढ़ापे से लाचार पिता सब कुछ सहता गया। उसने सोचा भी नहीं था कि उसे अपने जीवन में ऐसे दुर्दिन भी देखने पड़ेंगे। बेटा अपने पिता के प्रति अभी भी वही आदर रखता था, सुबह-शाम मिल लिया करता था। लेकिन बहूरानी ने अपने ससुर को कभी अपना पिता नहीं समझा।

जब से पश्चिम की हवा हमारे देश पर हावी हुई है तो ये बातें शुरू हो गई। उसे तो एक बूढ़ा आदमी दिखा। बेटा 5-7 दिन के लिये बाहर गया। इधर बहू ने अपने ससुर की खोज खबर तक न ली। सुबह से शाम तक कुछ नहीं पूछा। बेटा आया और आने पर उसने पूछा कि पिताजी कैसे हैं? तो बहू ने कहा ''पता नहीं कैसे हैं, तीन दिन से उन्होंने कुछ मँगाया ही नहीं, घंटी भी नहीं बजाई। कुछ नहीं मँगाया? हाँ उन्होंने कुछ नहीं मँगाया। पति ने पूछा- तुम गई थीं? बोली- ''नहीं, मैं नहीं गई।'' बेटा सीधे ऊपर गया। ऊपर जाकर देखता है कि पिताजी बिस्तर पर ही ढेर हो गये हैं, प्राणपखेरू उड़ चुके हैं। वह वहीं गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा कि पिताजी चल बसे। तीन दिन से उन्होंने घंटी नहीं बजाई। शव को देखकर भी यही लगा कि इनकी मृत्यु तो दो दिन पहिले ही हो गई थी। उसे बहुत झटका लगा कि यह क्या हो गया। आखिर पिताजी की घंटी कहीं दिखाई नहीं पड़ी। तभी उसका चार वर्ष का बेटा घंटी लेकर ऊपर आया और कहा कि ''पापा घंटी तो मेरे पास है।'' बोले- '' बेटे ये घंटी तुम क्यों ले गये थे?'' वह बोला- ''कुछ नहीं, एक दिन मैं दादाजी के पास आया, तो खेलते-खेलते घंटी ले गया। मैंने सोचा कि जब आप लोग बूढ़े हो जाओगे तो आपके लिए काम में आयेगी।'' ठीक भी है जब अपने पिता को दादा के लिए घंटी लिये दिखेगा, तो बेटा अपने पिता के लिए तो व्यवस्था करेगा ही करेगा। जैसा तुम्हारा व्यवहार होता है तुम्हारी संतान वही सीखती है इसलिए अपने व्यवहार में हमेशा परिवर्तन लाना चाहिए।

क्या खायें और क्यों?

अमेरिका में एक सर्वेक्षण हुआ, जो वहाँ के तीस नृशंस अपराधियों पर किया गया। दस-दस के तीन ग्रुप बनाए गए। पहले ग्रुप को छह माह तक गाय का शुद्ध दूध पिलाया गया, दूसरे ग्रुप को चावल और शाकाहारी भोजन कराया गया और तीसरे ग्रुप को पूर्ववत् मांसाहार दिया गया। उन्होंने अपने सर्वेक्षण की रिपोर्ट में लिखा कि जिस ग्रुप को शुद्ध दूध दिया गया, उसके अंदर दो महीने में ही अपराध-बोध शुरू हो गया, जो कभी अपना अपराध स्वीकारते नहीं थे, उनके अंदर अपराध-बोध शुरू हो गया और पश्चाताप भी प्रारंभ हो गया। जिन्हें शुद्ध शाकाहारी भोजन और चावल दिया गया था छह महीने में उनके अंदर अपराध-बोध शुरू हो गया और उन्होंने भी अपने अपराध को स्वीकार लिया। लेकिन जो तीसरा ग्रुप था उनमें आपराधिक प्रवृत्ति घटने की जगह और बढ़ गई क्योंकि उन्हें मांसाहार दिया गया था, उनका खान-पान अशुद्ध था और फिर उस आधार पर लिखा कि मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसके विचारों पर वैसा प्रभाव पड़ता है। यह बात हमारे देश में बहुत पहले से कहीं गई, हमारे देश की तो ये लोकोक्ति बन गई कि 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन और जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी'। हमारे मन और वाणी पर हमारे भोजन और पानी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।

भोजन लंपटता का परिणाम

एक आदमी एक जगह मेहमान हुआ, वहाँ बहुत ज्यादा पेड़े थे खोवे के। उसने खूब जी भर के पेड़े खाये, ठूँस-ठूँस कर पेड़े खाये, और पेड़े से पेट खूब भर गया, पानी वगैरह ठीक ढंग से पिया नहीं, उसे गैस्ट्रिक ट्रबल होने लगी। डॉक्टर के पास क्या, डॉक्टर ने उसे देखा, देखने के बाद कहा- ''भैया तुम्हें बड़ी बीमारी है, तुम एक काम करो, ये टेबलेट खा लो, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जाएगा।'' उसने कहा- ''डॉक्टर साहब टेबलेट के लिए जगह होती तो एकाध पेड़ा और नहीं खा लेता।'' ये लंपटता है, आसक्ति का परिणाम है।

संगति का असर

लुकमान हकीम एक सदाचारी भक्त हुए हैं। वे जब मरणासन्न थे तो उन्होंने अपने पुत्र को सब अच्छी शिक्षायें दीं। सब प्रकार की शिक्षा दे चुकने के बाद उनके पुत्र ने उनसे फिर निवेदन किया कि पिताजी और भी ऐसी कोई बात हो तो मुझे बताने की कृपा करें। लुकमान अंतिम श्वासें गिन रहे थे, उन्होंने इशारा किया और इशारे के आशय को समझकर बेटा धूपदान में से एक मुट्ठी चंदन का चूरा ले आया। उसके बाद लुकमान ने दूसरा इशारा किया, बेटा उसे समझते हुए, चूल्हे में से कोयला ले आया। लुकमान ने फिर इशारा किया और कहा दोनों को फेंक दो। दोनों को फेंक दिया गया। अब की बार लुकमान ने पूछा यह बताओ दोनों में क्या है? बेटा कुछ समझा नहीं। बोला- दोनों हाथ खाली है, तो लुकमान ने कहा नहीं दोनों हाथ खाली नहीं है, तुम अपने हाथ को गौर से देखो। उसने गौर से देखा तो उसे लगा कि जिस हाथ में चंदन का चूरा था वह अभी भी सुगंध बिखेर रहा है और जिस हाथ में कोयला रखा गया था उस हाथ में अभी भी कालिख नजर आ रही है। लुकमान ने रहस्य समझाते हुए कहा कि बेटा, मेरी तुम्हारे लिए यही अंतिम शिक्षा है। दुनिया में दो प्रकार के लोग हैं। कुछ ऐसे हैं जो चंदन की तरह सुरभि फैलाते हैं, चंदन का चूर्ण अभी भी तुम्हारे हाथ में सुगंध दे रहा है, जबकि अब चंदन नहीं है। कोयलेका टुकड़ा तुमने हाथ में रखा था, तब भी काला था और हाथ से फेंक देने के बाद भी हाथ काला है। उन्होंने बेटे से कहा ठीक इसी तरह दो प्रकार के लोग हैं दुनिया में। कुछ ऐसे हैं जिनके साथ जब तक रहो तब तक हमारा जीवन महकता है, और उनका साथ छूट जाने पर भी वह महक हमारे जीवन से जुड़ी रहती है और कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके साथ रहने में भी हमारा जीवन बिगड़ता है और छूटने के बाद भी बिगड़ा रहता है।

संगत कीजे साधु की

एक बार एक राजा जंगल की ओर जा रहा था। रास्ते में डाकुओं का इलाका पड़ता था। राजा अपने काफिले के साथ जैसे ही उधर से गुजरा तो उसे एक तोते की आवाज सुनाई पड़ी। **'वध्यताम् लूट्यताम्'** मारो-मारो, लूटो-लूटो। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कैसा तोता है कि डाकुओं को सूचना दे रहा है। राजा को बड़ा क्रोध आया पर राजा आगे बढ़ गया। कुछ दूर चलकर वह ऋषियों के पास आश्रम में पहुँचा जैसे ही आश्रम में पहुँचा। वहाँ द्वार पर एक तोता था, उस तोते ने बड़े मधुर स्वर में कहा **'स्वागतम् सुस्वागतम्'**। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। तोते की आवाज सुनकर ऋषिगण बाहर आ गये। उन्होंने राजा का सत्कार किया, अपने आश्रम में ऊगे फल-फूल से राजा को संतुष्ट किया। राजा से रहा नहीं गया, उसने ऋषियों से पूछा कि ऋषिवर! यह क्या देखा। एक ही कुल में ये दो तोते जन्में, दोनों का कुल एक, दोनों का वंश एक, दोनों की जाति एक, पर मैं अभी क्या देख कर आ रहा हूँ कि रास्ते में मुझे जो तोता मिला वह मेरे लिए गालियाँ दे रहा था, मारने ओर लूटने की बात कर रहा था और यह तोता है जो मेरे स्वागत में अपना प्रेम बरसा रहा है। ऋषियों ने कहा- राजन्! बात कुछ नहीं। इनमें दोष तोतों का नहीं, उन्हें पालने वालों का है। राजा को बात समझ में नहीं आई। ऋषियों ने कहा, बात यह है कि दोनों एक ही माँ की संतान है, पर एक डाकुओं के पास चला गया, एक ऋषियों के पास चला आया। **'संसर्गजा दोष-गुणा भवंति'**। जैसे लोगों के संसर्ग में रहते हैं वैसे ही गुण और दोष बन जाते हैं।

कमजोर मन बुराई को जल्दी पकड़ लेता है।

कृतज्ञ लुटेरे

एक डॉक्टर अपने परिवार के साथ कहीं जा रहे थे। कार में वे थे, उनके बच्चे थे और पत्नी थी। रास्ते में बीच जंगल में उनकी गाड़ी खराब हो गयी। डॉ. साहब को बड़ी दिक्कत हुई क्या किया जाये। उन्होंने अपनी पत्नी और बच्चों से कहा कि तुम यहीं रहो, मैं पास के गाँव से कुछ आदमियों को लेकर आता हूँ, उनके सहयोग से गाड़ी में सुधार करके आगे बढ़ेंगे। पत्नी और बच्चे बीच जंगल में अकेले रह गये। डॉक्टर सहयोग पाने के लिए पास के गाँव गया। अचानक जंगल की झाड़ियों से लुटेरों का एक दल आ गया। उन्होंने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया। गाड़ी में एक महिला और बच्चों को देखकर एक ने कड़कते स्वरों में कहा- ''निकाल दो जो कुछ भी है।'' बंदूकधारियों को देखकर डॉक्टर की पत्नी और बच्चे सकपका गये। उन्होंने अपने जेवर और रुपये जो कुछ भी थे सब उतार कर दे दिये। इसी बीच डॉक्टर भी आ गया। उसे गाँव में कोई सहयोगी नहीं मिला था इसलिए वह अकेला ही आया था। लुटेरों को देखकर वह एकदम घबरा गया। तभी लुटेरों के सरदार ने डॉक्टर को पहचान लिया। पहिचानते ही उसने हाथ जोड़कर कहा- ''डॉ. साहब मुझे क्षमा कर दीजिए। मुझे मालूम नहीं था कि यह आपकी गाड़ी है अन्यथा उसे हाथ भी नहीं लगाता। मुझसे गलती हो गयी। मुझ पर तो आपका बड़ा उपकार है। आप वही डॉक्टर हो न जिसने मेरे बेटे को बचाया था। हम सब कुछ कर सकते हैं पर कभी किसी के उपकार की अवमानना नहीं कर सकते क्योंकि कृतघ्नता तो नरक का द्वार है इसलिए मुझे क्षमा कीजिये। आपका जो कुछ सामान है, हम सब आपको लौटाते हैं।'' इतना ही नहीं, उसने साथियों से गाड़ी को धक्का दिलवाते हुए गाड़ी को जंगल से बाहर किया। कहते हैं कि लुटेरे भी कभी किसी के प्रति अकृतज्ञ नहीं होते।

महत्वपूर्ण जीवन नहीं,
जीवन मूल्य है।

वर्धते भयं

भरत चक्रवर्ती बहुत बड़े चक्रवर्ती थे, छह खंड का आधिपत्य था उनके पास। उनके लिए सुबह-सुबह जब उठाया जाता था तो घंटा बजता था। घंटों की नाद के साथ यह कहा जाता था वर्धते भयं, वर्धते भयं, वर्धते भयं अर्थात् भय बढ़ता है, भय बढ़ता है, भय बढ़ता है। किसका भय बढ़ रहा है चक्रवर्ती को? मृत्यु का भय, पाप का भय, बढ़ रहा है। जो इस बोध के साथ अपनी आँखें खोलेगा उसका जीवन कितना मंगलकारी होगा।

बड़ा कौन?

एक बार पुण्य और पाप दोनों एक दूसरे से मिले। दोनों में एक दूसरे से श्रेष्ठता की चर्चा चल पड़ी। पुण्य और पाप दोनों अपने आप को दूसरे से श्रेष्ठ कह रहे थे। बात विवाद में बदल गई। पुण्य ने पाप से कहा- ''तुम इतने नीच हो, लोग तुम्हारा नाम लेना भी अच्छा नहीं मानते, फिर भी तुम अपने आप को मुझसे महान कहते हो? देखो जगत् में मेरी कितनी प्रतिष्ठा है। सारी दुनिया मुझे चाहती है।'' पाप ने कहा- ''दुनिया भले ही तुम्हें चाहती है पर साथ किसका देती है? दुनिया चाहती तुम्हें है पर साथ मेरा देती है।'' चाहते पुण्य को हैं पर करते पाप हैं।

''**नाभुक्तं क्षीयते कर्म**'' तुमने अगर कोई पाप किया है तो बिना भोगे वह नष्ट नहीं होता।

कौवे के घर हंसा

काल सौकरिक अपने समय का कुख्यात कसाई था। प्रतिदिन वह पांच सौ भैसों का वध किया करता था। यह महावध उसका कुलगत धंधा था। काल सौकरिक के बेटे का नाम था ''सुलस''। कैसा विचित्र संयोग कि महाक्रूर-कर्मी बाप का बेटा एकदम दयार्द्र था। अहिंसा की भावना से ओत-प्रोत था। हिंसा के प्रति उसके मन में गहरी ग्लानि थी। बूचड़खाना जाना तो बहुत दूर उसके नाम से ही उसे कपकपी सी होती थी। पता नहीं कौवे के घर पर यह हंस कैसे आ गया।

काल सौकरिक पुत्र की इस अहिंसक वृत्ति को देखकर मन ही मन बहुत चिन्तित था। ज्यों-ज्यों वह वृद्धत्व के नजदीक पहुंच रहा था, उसकी यह चिंता क्रमशः बढ़ती जा रही थी। वह जब-तब पुत्र को अपना हिंसा का दर्शन समझाता। कुलधर्म की महत्ता बखानता और उसे निभाने की प्रेरणा देता। पर सुलस पर इन सबका कोई असर नहीं हुआ, प्रत्युत हिंसा के प्रति उसकी ग्लानि बढ़ती ही गई।

काल सौकरिक की मृत्यु हो जाने के बाद कौटुम्बिक जन एकत्रित हुए। उन्होंने सुलस को पिता का भार संभालने के लिए कहा सुलस ने कहा-जितना निभ सकेगा उतना निभाने का प्रयास करुँगा।

कौटुम्बिक जनों ने उसके सिर पर परिवार प्रमुख की पगड़ी बाँधने से पूर्व हाथ में एक तलवार पकड़वाई और पास बँधे भैसे की गर्दन पर चलाने का निर्देश दिया। कुल-परम्परा के अनुसार परिवार प्रमुख बनने के लिए ऐसा करना आवश्यक माना जाता था। पर सुलस की आत्मा ने उसे यह कार्य करने की अनुमति नहीं दी। उसने भैसे पर प्रहार करने से स्पष्ट इनकार करते हुए कहा- इसके लिए आप लोग मुझे बाध्य नहीं कर सकते।

कौटुम्बिक जनों ने कहा-'बाद में तुम्हारी जैसी इच्छा हो सो करना पर अभी रस्म के रूप में एक बार तो तलवार चलानी ही होगी। अन्यथा तुम्हारे पिता की कीर्ति पर कालिख पुत जायेगी। समूची विरादरी बदनाम हो जायेगी।'

सुलस इधर कौटुम्बिक जनों के आग्रह को देख रहा था और उधर मूक

भैसे की दयनीय दशा को। उसका दिल दहल उठा। उसने कौटुम्बिक जनों से कहा-

'यदि तलवार चलानी इतनी जरुरी है तो मैं अपने पैर पर चला सकता हूँ मूक पशु पर नहीं।' ऐसा कहते हुए अपने पैर पर तलवार चलाने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। पारिवारिक जनों ने झट लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा- 'यह क्या पागलपन है। अभी पैर कट जाता तो फिर उम्रभर रोते रहते।'

सुलस ने अत्यंत गंभीर और शांत स्वर में अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहा 'मैं पिताजी का उत्तराधिकारी अवश्य हूँ पर उनके दुष्कृत्यों का नहीं। पैर काटने से जैसा दुःख मुझे होता है वैसा ही दुःख इस भैसें को भी होता हैं। हांलाकि मैं और मेरे जैसे प्राणी अपने दुःख को व्यक्त कर सकते है और भैसा नहीं कर सकता है, परन्तु दुःख तो सबका एक सरीखा ही है। मौत मैं नहीं चाहता तो यह भैंसा भी नहीं चाहता। फिर इस भैसे पर तलवार का प्रहार करना अनर्थ है। घोर अन्याय है। मैं यह अनर्थ और अन्याय कदापि नहीं कर सकता।'

सच है ऐसी संवेदना के जगजाने के बाद हिंसा और क्रूरता की वृत्ति पनप ही नहीं सकती।

जो मनुष्य सक्षम होकर भी
किसी की मुसीबत में सहायक नहीं बनता,
उसकी सक्षमता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

जैसा करोगे वैसा पाओगे

सदन नाम का एक कसाई था। वह राजा के यहाँ मांसाहार तैयार कर रोज परोसा करता था। रोज एक बकरे का वध करता था। एक दिन राजा के शाही भोज में बहुत कम लोग थे। सदन के मन में आया-आज पूरा बकरा क्यों काटा जाये? आज तो थोड़ा सा माँस निकालकर काम चला लिया जाये, बाकी अगले दिन काट लिया जायेगा। थोड़ा सा मांस निकालने की भावना से जब सदन बकरे के पास पहुंचा तो उसे ऐसा लगा जैसे बकरा आज हँस रहा है। सदन ने बकरे से पूछा- 'तू आज क्यों हँस रहा है?'

बकरे ने कहा- ''शायद तुम मुझे नहीं पहिचानते हो पर मैं तुम्हें अच्छी तरह से जानता हूँ। हमारा तुम्हारा संबंध आज का नहीं बहुत पुराना है। जब-जब मैं बकरा बना हूँ तुमने मुझे काटा है और जब-जब तुम बकरा बने हो, मैंने तुम्हें काटा है। यह घात-प्रतिघात का दौर बहुत समय से चला आ रहा है। लेकिन आज तुम्हारे मन में थोड़ा सा परिवर्तन आ गया है। आज तुम मुझे पूरी तरह मारने की बजाय, थोड़ा सा माँस लेने का मन बनाकर आये हो। जब मेरा नम्बर आयेगा तो मैं इससे भी कम माँस निकालूँगा।''

इतना सुनना था कि सदन कसाई के हाथ की छूरी एक तरफ जा गिरी। उसे आत्म बोध हो गया कि आखिर इस हिंसा का परिणाम क्या होता है?

जिसके सिर पर
माता-पिता का वरदहस्त रहता है
उसका भाग्य और सम्पदा दिनो-दिन
ऊपर चढ़ते जाते हैं।

ले सहारा अनेकान्त का

एक बार एक व्यक्ति ने विनोबा जी से कहा- ''बाबा मैं जो कहता हूँ, बिल्कुल सत्य कहता हूँ।'' विनोबा जी ने उससे प्रति-प्रश्न करते हुए पूछा कि क्या तुम यह बात पक्के तौर पर कहते हो कि जो तुम कहते हो वही सही होता है? उस व्यक्ति ने कहा-''हाँ मेरी यही धारणा है।'' विनोबा जी ने उसे समझाने के लिए पूछा- ''अच्छा यह बताओं हिमालय किधर है?''

उसने जबाव दिया-''उत्तर में''

''यही प्रश्न किसी चीन के व्यक्ति से पूछा जाए तो क्या जबाब होगा?'' विनोबा जी ने पुनः पूछा।

उसने जबाब दिया-''दक्षिण में।''

विनाबा जी ने उसे समझाते हुए कहा कि देखो कभी भी अपनी ही बात का आग्रह रखना उचित नहीं। हमें सामने वाले की बात भी सुननी चाहिए। अपनी जगह हम सही हो सकते हैं पर दूसरे की जगह गलत भी हो सकते हैं। हिमालय हमारी अपेक्षा उत्तर में है पर चीनी व्यक्ति की अपेक्षा तो दक्षिण में ही होगा। यही अपेक्षा का सिद्धान्त है।

अनेकान्त हमें दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का एक मौका देता है और आपेक्षिक सत्य के रूप में स्वीकार करने की सहिष्णुता उदारता हमारे अन्दर उत्पन्न करता है।

संकल्प से ही व्यक्ति छोटा-बडा या भला-बुरा बनता है।

दृष्टिकोण-महत्वपूर्ण

विवेकानन्द जब अमेरिका गये और अपना पहला भाषण दिया तो कुछ लोगों ने उनके भाषण को जब गंभीरता से नहीं लिया तब उन्होंने कहा कि "fifty Percent Americans are fools" कोई भरी सभा में यह कह दे कि पचास प्रतिशत अमेरिकन मूर्ख हैं, तो प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। सभा में खलबली मच गयी। उत्तेजना का वातावरण देखकर विवेकानन्द जी ने तुरन्त दूसरा पक्ष लेकर कहा-

"I recetify my statement, that fifty Precent Americans are wise" मैं अपने वक्तव्य को संशोधित कर पुनः कहना चाहूँगा कि पचास प्रतिशत अमेरिकन बुद्धिमान् हैं। इससे वातावरण बदल गया। सभा में शान्ति हो गयी।

कहने का दृष्टिकोण ही था। वस्तु अपनी जगह यथावत् है।

इच्छाओं का करें नियंत्रण

गाँधीजी ने जीवन भर इच्छा परिमाण व्रत का पालन किया। उन्होंने अपरिग्रह व्रत के आदर्श को अपनाकर सम्पूर्ण जीवन जिया। वे हमेशा आधी धोती ही पहिनते थे। यह संकल्प उनके मन में तब जगा जब उन्होंने देखा- एक गरीब महिला आधी धोती पहिने है और आधी धोती धोकर सुखा रही है। उसे देखकर उनके मन में प्रेरणा जगी एवं उन्होंने उसी समय यह संकल्प लिया कि जब हमारे देश में ऐसे लोग हैं जिन्हें पूरा शरीर ढ़कने तक को वस्त्र नहीं है तो मैं अधिक वस्त्र धारण क्यों करूँ? इसीलिए उन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी आधी धोती के सहारे गुजार दी। अपरिग्रह का ऐसा आदर्श हमारे जीवन में आना ही चाहिए।

अधूरे अरमान

जब रावण मृत्यु-शय्या पर पड़ा अपनी अन्तिम श्वासें गिन रहा था, उस समय उससे पूछा गया कि उसकी कोई इच्छा अवशिष्ट रह गई हो तो बताये, उसे पूरा किया जाएगा। इस इस पर रावण ने कहा- ''मेरे जीवन के कुछ अरमान अधूरे रहे गये हैं। मेरे कुछ सपने ऐसे अधूरे रह गये हैं, जो पंख कटे पक्षी की तरह अब उड़ान भरने में असमर्थ हैं। वे अब किसी तरह पूरे नहीं हो सकते।''

(1) मेरी इच्छा थी कि अग्नि जले परन्तु उससे कालिख और धुँआ न निकले। उसमें मलिनता नहीं केवल प्रकाश और उज्जवलता हो।

(2) सोना, जो देखने में बहुत सुन्दर लगता है, उसमें सुगन्ध भी हो।

(3) लंका के चारो ओर जो खारे पानी का समुद्र लहरा रहा है, उसका जल मीठा बन जाए, ताकि सबके काम आ सके।

उसने आगे कहा कि इच्छाएँ तो और भी हैं, पर मेरी ये तीन खास इच्छाएँ अधूरी रह गई है। मैंने संसार के इस छोर से उस छोर तक अपनी विजय दुन्दुभि बजाई, सोने की लंका बसाई, सारे जगत् को अपने पौरुष और पराक्रम से अपने आधीन किया, फिर भी मेरी असंख्य इच्छाएँ अधूरी रह गई। बस, उन्हीं के दुःख और दर्द से मैं छटपटा रहा हूँ।

यह कथा मात्र रावण की नहीं, संसार के हर प्राणी की यही दशा है। हर प्राणी जीवन भर अनेक प्रकार के सपने गढ़ता है, अरमान संजोता है, लेकिन मरते दम सबको अधूरा छोड़कर जाता है।

आकृति से नहीं
प्रकृति से मनुष्य बनें।

धर्म और धंधा

एक सन्त किसी नगर में अपना धर्म प्रवचन दे रहे थे। काफी अधिक श्रद्धालु नित्य-प्रति उनके प्रवचन में जाते थे। सन्त अपनी मधुर वाणी से सबको जीवन के शाश्वत मूल्यों का पाठ-पढ़ाते थे। एक दिन एक चोर उनकी सभा में कहीं से पहुँच गया। वह पीछे बैठकर सन्त की अमृत वाणी का पान करने लगा। प्रवचन का उस पर बड़ा प्रभावी असर हुआ। उसे अपने कृत्यों से ग्लानि होने लगी। उसने मन ही मन यह तय कर लिया कि आज के बाद मैं कभी चोरी नहीं करूँगा।

अगले दिन उसे अपने घर के लिए कुछ सौदा खरीदना था। वह एक सेठ की दुकान पर गया। सेठ ने उसका सामान तौलते समय डंडी मार ली। यह देखकर चोर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सेठ से कहा- ''सेठ जी, हद् हो गई, आप प्रतिदिन सन्तश्री के प्रवचन सुनने जाते हो, सबसे आगे की पंक्ति में बैठते हो, उसके बाद भी बेईमानी करते हो! मैंने तो एक दिन के प्रवचन से ही चोरी का त्याग कर दिया। जबकि मेरी तो जीविका ही वही थी।''

सेठ ने चोर को समझाते हुए कहा- ''सुनो भाई, वह धर्म है, यह धन्धा। हम धर्म और धन्धे को एक करना नहीं चाहते।''

सुचरित्र का आधार, सम्यक् संस्कार

यदि प्रारम्भ से ही बच्चों के संस्कारों के प्रति सावधानी रखी जाए तो इन नौनिहालों का जीवन निहाल हो सकता है। एक बार एक माँ अपने चार वर्ष के बच्चे को लेकर किसी सन्त के पास पहुँची। उसने निवेदन किया कि गुरुजी मेरे बच्चे को संस्कारित करे। सन्त ने कहा कि आप चार वर्ष नौ माह देर से आई हो। अब तक तो इस पर बहुत सारे संस्कार पड़ चुके हैं। जिनका पल्लवन भविष्य में होगा। गीली मिट्टी को चाहे जैसा आकार दिया जा सकता है, उसके सूख जाने पर नहीं।

भोजनभट्ट का हाल

एक पण्डित जी थे। एक बार उन्हें यजमान ने आमंत्रित किया। भोजन स्वादिष्ट था। अनेक प्रकार के व्यंजन बनाये गये थे, भोजन में जो रसगुल्ले परसे गये थे वे पण्डित जी को बहुत स्वादिष्ट लगे। खाना शुरू किया तो बस खाते ही चले गये, रुकने की आवश्यकता ही नहीं समझी। रसलोलुप पण्डित जी जब खाना खा चुके तो उठ नहीं सके। पण्डित जी को उदरशूल (पेट दर्द) होने लगा। वे दर्द से छटपटाने लगे, वैद्य को बुलाया गया, वैद्य ने देखभाल कर उन्हें एक दवा की चार चार गोलियाँ, एक गिलास पानी के साथ खाने के लिए दी। पण्डित जी ने कहा ''वैध जी अगर मेरे पेट में इतनी जगह होती कि मैं ये गोलियाँ खाकर एक गिलास पानी पी सकता, तो मैं दो चार रसगुल्ले ही और नहीं खा लेता।''

रसलोलुपता का एक उदाहरण है।

हमें तो अपनो ने लूटा

एक बार एक लुहार बैलगाड़ी से लोहे की कुल्हाड़ी लेकर जा रहा था। गाड़ी भरी थी। रास्ते में जंगल पड़ा। बड़े-बड़े सागवान् के पेड़ खड़े थे। पेड़ों ने कुल्हाड़ी को देखा तो उनमें कपकपी उत्पन्न हो गई। सभी ने सोचा इन कुल्हाड़ियों से अपना अन्त निश्चित है। घबड़ाये हुए पेड़ों को देखकर एक बड़े पेड़ ने अन्य पेड़ों को संबोधित करते हुए कहा- इन कुल्हाड़ियों से हमें तब-तक कोई खतरा नहीं जब तक हमारे बीच का ही कोई साथी इनमें जाकर न मिलें। जब तक कुल्हाड़ी में बेंट नहीं होगी, वह हमारा बाल बाँका भी नहीं कर सकती।''

अतिथि सेवा सबसे बड़ी पूजा

राजा रंतीदेव, एक प्रजा वत्सल राजा थे। वे अतिथि सेवा को अपना मूल धर्म मानते थे। उन्होंने दीन-दु:खियों की सेवा में अपना सर्वस्व लुटा दिया था। उनके जीवन की एक मार्मिक घटना है।

उनके राज्य में अकाल पड़ा उन्होंने सारे राज-कोष को दीन-दु:खी जीवों को समर्पित कर दिया।

जब एक-एक करके सारा खजाना खाली हो गया, तो इस आपातकालीन स्थिति को देखकर उन्होंने तत्काल निर्णय लिया और अपनी पत्नी व पुत्र के साथ वन को प्रस्थान कर दिया।

राज्य का परित्याग करके चालीस दिन तक वह निराहार रहें। इसी बीच चालीस दिन के बाद अप्रत्याशित रूप से एक व्यक्ति भोजन की थाली लेकर प्रकट हुआ। चालीस दिन के बाद भोजन देखकर उन्हें राहत मिली और सारे भोजन को उन्होंने तीन हिस्सों में बाँटा। जैसे ही वे खाने को तैयार हुए उनके मन में एक हूक सी उठी कि कोई अतिथि मिल जाता तो इस आपातकाल में भी मेरा व्रत पूरा हो जाता। इतना सोचा ही था कि एक ब्राह्मण सामने आ गया। अपने हिस्से का भोजन उन्होंने ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण खा-पीकर जैसे ही वहाँ से चला कि एक अंत्यज सामने आ गया। अंत्यज को आता देख, उन्होंने पत्नी के हिस्से का भोजन भी आगे कर दिया। अंत्यज उसे पाकर प्रसन्न हुआ।

देखते ही देखते एक चाण्डाल अपने कुत्तों के साथ वहाँ आ धमका। उन्होंने अपने पुत्र का भोजन उस चाण्डाल व कुत्तों को खिला दिया। कुत्तों ने इतनी उछल-कूद मचाई कि पात्र में जो पानी रखा था, वह भी बह गया।

इस आपातस्थिति में भी उन्होंने रंचमात्र भी क्लेश नहीं किया। सब कुछ समर्पित कर देने के बाद उन्हें इस बात का सन्तोष था कि इस संकट काल में भी हमारा धर्म पल गया।

तभी आकाश में दिव्यवाणी हुई।

देखा-सामने साक्षात् भगवान् प्रकट हो गये हैं। वे कहने लगे-हमने तुम्हारे सेवा-व्रत की परीक्षा लेने के लिए यह उपक्रम रचा था। यह स्पष्ट हो गया है कि तुम इस कठिन दौर में भी सेवा-व्रत से नहीं डिगे। हम प्रसन्न हैं-माँगों, क्या वर माँगना चाहते हो। रंतीदेव ने जो वर माँगा वह मानवता का सर्वोच्च आदर्श बन गया।

नत्वहम् कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां, प्राणिणामर्ति नाशनम्॥

''भगवान! मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग। मैं अपुनर्भव/मोक्ष भी नहीं चाहता। यदि आप प्रसन्न होकर मुझे कुछ देना चाहते हैं तो सदैव दीन-दुःखी प्राणियों की पीड़ा हरने की सामर्थ्य मुझे दे दें। मैं सब कुछ प्राप्त कर लूँगा।''

मूल्यांकन करो चेतन का

एक जगह बहुत बड़ी Exhibition (प्रदर्शनी) लगी थी। एक चित्रकार के अच्छे-अच्छे चित्रों की प्रदर्शनी थी। उसका एक चित्र एक लाख डालर में बिका। वह व्यक्ति उस चित्र को खरीदकर जब बाहर आया तो देखता है कि एक भिखारिन बाहर बैठी भिक्षा माँग रही है। इसको देखकर उस व्यक्ति ने एक डालर भी उसकी झोली में नहीं डाला। उस व्यक्ति ने अपने सहायक सचिव से सहज में पूछ लिया-''यह बुढ़िया कौन है? और क्यों बैठी है?'' सचिव कहता है-''यह वही बुढ़िया है, जिसका चित्र आपने एक लाख डालर में लिया है।''

यह हमारे जीवन की बिडम्बना है कि चित्र तो एक लाख का परन्तु जीवित चरित्र एक डालर का भी नहीं है।

जड़ का मूल्य एक लाख डालर और चेतन का मूल्य एक डालर भी नहीं। यदि अपने आपको जड़ता से मुक्त रखना चाहते हो तो चेतन का मूल्यांकन करना सीखना होगा।

कनेक्शन ठीक करें

पेशे से डॉक्टर, सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे ''महाराज! सुनते तो हम बहुत कुछ हैं, परन्तु इस सब पर नियंत्रण कैसे करें? ऐसा कोई सिस्टम नहीं है कि एक बार में कुछ नियंत्रित हो जाए। आप आत्मा की इतनी बातें करते हैं। अध्यात्म को इतना महिमा मंडित करते हैं। कुछ पल्ले नहीं पड़ता।''

आज विज्ञान का युग है। आत्मा तो दिखती है नहीं पर बात आत्मा, आत्मा की होती है। इससे अच्छा विज्ञान है कि बटन दबाओं और लाइट जल जाती हैं।

मैंने कहा-अध्यात्म एक 'सुपर साइन्स' है। इसमें तो बटन दबाने की भी जरुरत नहीं पड़ती। ओटोमैटिक लाइट जल जाती है। परन्तु विचार करो कि यह लाइट केवल बटन दबाने से ही जल जाती है या इसके पीछे कुछ और सिस्टम है।

यदि बटन दबायें और बल्ब फ्यूज हो तो....? कदाचित् बल्ब ठीक है और कटआउट का फ्यूज उड़ा हुआ हो तो क्या लाइट जल पायेगी? बल्ब का सम्बन्ध स्विच बोर्ड से है, वह मैनस्विच से जुड़ा है। मैनस्विच मीटर से, मीटर पोल से सम्बन्धित है। पोल ट्रान्सफारमर से तथा खम्बों के माध्यम से पावर हाउस से जुड़ा है। पावर हाउस का संचालन भी 'टरबाइन' की घूर्णनगति से है। अगर इस पूरे सिस्टम में, एक खम्बा भी उखड़ जाये तो क्या लाइट जल सकती है? फिर कोई कैसे कह सकता है कि बटन दबाने से लाइट जल जाती हैं?

ठीक इसी प्रकार-अध्यात्म का भी पूरा एक सिस्टम है। यदि आपका 'कनेक्शन' सही है तो वह प्रकाश-प्रस्फुटित हो जाता है। चर्चा, तत्त्व की करें और रुचि विषयों के प्रति हो। चर्चा अध्यात्म की हो तथा अबुद्धि पूर्वक क्रोध, मान, माया और लोभ के संस्कार का काम रहे तो अध्यात्म का प्रकाश कैसे प्रकट हो सकता है? अबुद्धि पूर्वक किए गये कार्य को नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

हो जायेगा। परिस्थितियाँ ही आदतों का निर्माण करती है। बुराई पर विजय पाने के लिए बुरी परिस्थितियों से बचाव करने की कोशिश करनी होगी। बुराई-एक ढलान की भाँति होती है। जैसे ढलान में बिना शक्ति के वस्तु गतिशील

बन जाती है, ठीक इसी तरह मन भी बुराई के प्रति आकर्षित होता है। कमजोर मन-बुराई को जल्दी पकड़ लेता है। कमजोर इच्छा शक्ति वाला परिस्थितियों का गुलाम जल्दी बन जाता है।

'सत्संग' व्यक्ति को दृढ़ इच्छा शक्ति वाला बनाता है।

आती लक्ष्मी-लगती अच्छी

एक बार एक सेठ के पास लक्ष्मी और दरिद्रता दोनों आ गई। दोनों में इस बात का विवाद हुआ कि हम दोनों में श्रेष्ठ कौन है? कौन अच्छी है? अब सेठ क्या करे? लक्ष्मी को अच्छी कहता है तो दरिद्रता नाराज हो जाती है और दरिद्रता को अच्छी कहता है तो लक्ष्मी नाराज हो जाती है। सेठ आपत्ति मोल लेना नहीं चाहता था। बहुत समझदार था। एक काम करो, मैं तुम्हारा फैसला बाद में करूँगा। पहले वह सामने जो पेड़ दिख रहा है वह छू कर के आओ, फिर मैं बताऊँगा कि तुममें कौन श्रेष्ठ है। दोनों गईं और एक साथ पेड़ को छू कर आ गईं। अब सेठ क्या जवाब दे। उसने कहा- तुम दोनों अच्छी हो। लक्ष्मी से कहा- तुम जब आती हो तो अच्छी लगती हो और दरिद्रता से कहा जब तुम जाती हो तो अच्छी लगती हो। लक्ष्मी हमेशा आती हुई और दरिद्रता हमेशा जाती हुई अच्छी लगती है।

'पर दु:ख कातरता' एक दैवीय गुण है।
जो इससे शून्य है,
भले ही वह आकृति से इन्सान हो
परन्तु इन्सानियत से वह शून्य है।

स्वाध्याय का महत्त्व

जैन परम्परा में एक बहुत बड़े विद्वान हुए हैं रतनचंद सहारनपुर वाले। वे मुख्तार थे उन्हें अंग्रेजी व उर्दू के अलावा हिन्दी भाषा भी नहीं आती थी। आप सुनकर ताज्जुब करोगे कि ऐसा व्यक्ति कभी जैन जगत का शिरोमणि भी हो सकता है? ऐसा व्यक्ति जिसे रिफरेन्स बुक के नाम से कहा गया था। उनसे यदि किसी भी प्रसंग की बात पूछी जाती तो वह कहते कि यह बात अमुक ग्रन्थ के, अमुक पृष्ठ में, अमुक पंक्ति में लिखी हुई है। मालूम है वहां तक वो कैसे पहुंचे? उन दिनों मंदिरों में गोम्मटसार का स्वाध्याय हुआ करता था। गोम्मटसार में कुछ गणितीय विवेचन हैं। मुख्तार जी धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत थे। रोज दोनों समय मंदिर जाया करते थे। शाम के समय में कुछ बुजुर्ग स्वाध्याय कर रहे थे और वे अपनी गणितीय चर्चा में उलझे हुए थे। गणित के प्रति इनकी रुचि थी इसलिए वे एक तरफ खड़े होकर रुचि लेने लगे। इन्होंने देखा कि ये सब कुछ कह रहे हैं लेकिन केलकुलेशन गड़बड़ था। उनकी समस्या हल नहीं हो रही थी। इन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर बताया कि आप इस तरीके से कीजिये और आपकी समस्या हल हो जायेगी। उनका बताना था कि समस्या हल हो गई। सभी बुजुर्ग बड़े खुश हुए उन सबने उनकी पीठ थपथपायी और बोले- बेटा, तेरी गणित बहुत अच्छी है तू रोज आ जाया कर, हम सबको समझा दिया कर और गलितयां बता दिया कर। बस, प्रेरणा व प्रोत्साहन मिला। वाकई में वे बुजुर्ग बड़े अनुभवी थे। आजकल के होते तो उनसे कहते जुम्मा-जुम्मा आठ रोज का है और हमें सिखाने आया है। हम जिन्दगी भर से स्वाध्याय करते आ रहे हैं और हमें समझाने चला है। वस्तुतः जब हम ठेकेदार बन जाते हैं तो मार्ग बंद कर देते हैं। वे बड़े अनुभवी थे अब वह रोज आने लगे। प्रतिभा तो उनके पास थी ही जिनवाणी के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा, विनय और बहुमान था। रोज बैठते गये और जिनवाणी में घुसते गए। प्रवेश हुआ और उसका नतीजा निकला कि एक युवक जिसे अंग्रेजी व उर्दू के अतिरिक्त कुछ नहीं आता था वह जैन जगत का प्रकाण्ड विद्वान बन गया।

सुविधा बनेगी दुविधा

एक राजा था। राजा के लिये रोज कोमल कोमल पत्तियों को एकत्रित करके सेज बिछाई जाती थी। राजा उस पर रोज आराम करता था। रोज का यह क्रम बना हुआ था। एकदिन माली के मन में आया यह कोमल-कोमल फूलों का कैसा सुख है? राजा रोज-रोज इसे लेता है, थोड़ा इसका भी तो अनुभव लिया जाये। राजा तो रात में आकर सोयेगा। बहुत समय है, अभी तो सांझ ढलने को है। क्यों न मैं थोड़ी देर आराम करलूं। फिर ठीक कर दूंगा, राजा को थोड़े ही पता चलेगा। वह सेज पर लेटा और उसके सुखद स्पर्श में मुग्ध हो गया। लेटा क्या सो गया, नींद लग गई। राजा समय पर आया। देखता क्या है, यह महानुभाव लेटा है। राजा एकदम आगबबूला हो गया। उसने सोचा, असली मजा तो यही लेता है। मुझे तो इसकी जूठन का उपभोग करने को मिलता है। राजा एकदम तमतमा गया और कोड़े उठाकर उस पर कोड़े बरसाना शुरु कर दिया। माली के ऊपर जैसे ही कोड़े पड़े उसके होश उड़ गये। देखा सामने राजा है जो साक्षात् यमदूत की तरह है। लेकिन एक ही क्षण में उसने अपने आपको सम्हाला और जैसे ही राजा ने कोड़ा बरसाया, उसने जोर से हंसना शुरु कर दिया। राजा जितनी जोर से कोड़ा मारे वह उतनी ही जोर से हंसे, खिलखिलाये। राजा को बात समझ में नहीं आई। वह और गुस्सा हो गया। लगा वह और जोर से कोड़े मारने। जब अनेक कोड़े मारने के बाद भी वह लगातार हंसता रहा तो राजा ने अपने कोड़े को रोका और पूछा, यह बता, तू हँस क्यों रहा है? तुझे तो रोना चाहिए। उसने कहा महाराज मैने देख लिया कि जिन्दगी में थोड़ी देर के लिये सेज पर चढ़ा तो मुझे इतने कोड़े पड़े। मैं तो अपने आपको भाग्यवान समझ रहा हूँ कि इतने ही कोड़े में निपट गया। आप तो रोज इन सेजों पर चढ़ते हैं, पता नहीं, आपको कितने कोड़े पड़ेगे? तब समझ में आयेगा। राजा की आँख खुल गई।

वही दान महान्,
जब दूसरा हाथ रहे अनजान

रहीम खानखाना एक बहुत बड़े कवि हुये। वे बड़े दानी थे, उदार थे, एकबार उनसे किसी ने पूछा, आप जब दान करते हैं तो उस समय आपकी आंखे एकदम झुकी रहती हैं, ऐसा क्यों? दोहे के माध्यम से अपनी जिज्ञासा को प्रगट करते हुये रहीम खाना से पूछा गया-

सीखी कहाँ नवाब जी यो ऐसी दीनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचों कियो, त्यों त्यों नीचा नैन॥

आपने यह कहाँ से कला सीखी कि जितना आप दे रहे हैं, हाथ उठा रहे हैं देने के लिये, उतनी उतनी आपकी आंखें नीची हो रही है? आखिर क्यों? तो रहीम ने जो जवाब दिया वह उनके अन्दर की विनम्रता और उदारता की मिसाल बन गई। उन्होंने कहां-

देनहार कोई और है, देवत है दिन रैन।
लोग भरम मोपै करें, तातें नीचे नैन॥

समझ में आ गया। हम कौन हैं देने वाले? यह सब तो विधि की एक व्यवस्था है और हम उसके एक छोटे से व्यवस्थापक।

अभिमानी की दशा

एक अंगीठी सुलग रही थी। लाल-लाल अंगारे उसमें दहक रहे थे। बड़ा तेज और कान्ति थी उनमें। तभी एक अंगार के मन में यह अभिमान उमड़ा कि ''मैं इतना कान्तिमान हूँ, मुझमें इतना तेज है, तो फिर मैं इस अंगीठी में क्यों रहूँ?'' यह उचट कर नीचे आ गया। फिर क्या था। धीरे-धीरे उसका तेज घटने लगा, उसकी आभा क्षीण होने लगी। उसके ऊपर राख की परत छाने लगी, धीरे-धीरे वह काला पड़ गया। अहंकार की यही परिणति है।

आओं करें हृदय को प्रकाशित

तीन दिन का भूखा भिखारी नगर सेठ की हवेली के द्वार पर गया। उसने भिक्षा के लिए पुकार लगायी। सेठानी ने भिखारी को देखा और कहा- ''आगे जाओ, यहाँ कुछ नहीं है।'' भिखारी ने कातर स्वर में कहा ''माता जी, तीन दिन का भूखा हूँ, कुछ तो दे दीजिए।'' भिखारी को दुत्कारते हुए सेठानी ने कहा- ''यहाँ से जाते हो कि नहीं, सुबह-सुबह दिन खराब करने के लिए आ गये।'' भिखारी भी ऐसा-वैसा नहीं था। उसने अत्यन्त दीनतापूर्वक प्रार्थना की और कहा- ''माता जी, एक रोटी ही दे दो, बड़ी कृपा होगी।'' सेठानी तमतमा गयी। उसने भिखारी को रोटी देने की जगह पास पड़ा फर्श पोंछने का पोतना उठाया और उस भिखारी पर दे मारा।

भिखारी ने सहज भाव से उसे उठा लिया। भगवान् को धन्यवाद देते हुए उसने कहा- चलो कुछ तो मिला। साँझ ढलने पर वह भगवान् के मन्दिर में गया। उस पोतने की एक बाती बनायी और भगवान् के सामने जलाकर उसने भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहा- ''हे प्रभो! इस दीपक की तरह उस सेठानी के हृदय को भी प्रकाश से भर दे।''

भिखारी की यह भावना उसके अन्तरंग में विराजित उत्तमक्षमा की अभिव्यक्ति है।

बुराई एक ढलान की भांति होती है।
जैसे ढ़लान में बिना शक्ति के
वस्तु गतिशील बन जाती है,
ठीक इसी तरह मन भी बुराई के प्रति
आकर्षित होता है।

लालच बुरी बला

एक सेठ था। उसे व्यापार के लिए विदेश जाना था। उसने अपनी सारी सम्पत्ति को बेचकर एक बहूमूल्य रत्न खरीदा, उसे अपनी पत्नी को सौंपकर वह विदेश रवाना हो गया। रवाना होते-होते उसने अपनी पत्नी से कहा- ''यह मेरे जीवन भर की पूँजी है, इसे सम्हाल कर रखना।'' सेठ की पत्नी धर्मपरायण थी। पति के विदेश चले जाने के बाद वह अपना अधिकांश समय भगवान् के चरणों में बिताती थी। वह प्रतिदिन अपने उद्यान के चैत्यालय में वीणा-वादन के साथ भावपूर्ण भक्ति किया करती थी। उसकी भक्ति से प्रभावित होकर एक हिरण वहाँ प्रतिदिन आता था। वह भी सेठ की पत्नी के साथ भक्ति रस में विभोर होता और अन्त में जाते समय अपने मुँह से एक कीमती रत्न उगलकर जाता था। सेठानी उसे उठाकर अपने घर के कक्ष में सुरक्षित रख लेती थी। यह रोज का क्रम था। प्रतिदिन सेठानी भक्ति करती, हिरण आता और एक रत्न उगलकर चला जाता। बारह वर्षों में रत्नों का भण्डार भर गया।

इधर सेठ का खूब अच्छा व्यापार चला। बारह वर्षों के बाद उसे अपने घर की याद आयी। अपनी सारी सम्पत्ति के मूल्य में उसने पाँच कीमती रत्न खरीदे। रत्नों को लेकर वह घर आया। पत्नी ने अपने पति का आत्मीयतापूर्ण स्वागत किया। पति ने अपनी विदेश यात्रा की कथा सुनाते हुए पाँचों रत्न पत्नी के सामने रख दिये। पत्नी ने सहज भाव से उन रत्नों को देखा और कहा- ''बस इन पाँच रत्नों के पीछे आपने बारह वर्ष बिता दिये। मेरे पास तो पूरा कक्ष इन रत्नों से भरा है।'' पत्नी ने रत्नों से भरे भण्डार को खोलकर पति को दिखाया। पति की आँखें चौधियाँ गईं। उसने आश्चर्यपूर्वक पत्नी से पूछा- ''यह सब कैसे हुआ।'' पत्नी ने सब कुछ सच-सच बता दिया। सेठ को विश्वास नहीं हुआ। उसे अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह होने लगा। सेठ की पत्नी ने कहा- यदि आपको मेरे वचनों पर विश्वास नहीं हो रहा है तो आप कल देख लेना, मैं भक्ति करूँगी, हिरण आएगा और रत्न गिराकर जाएगा।

अगले दिन सेठ की पत्नी ने अपने क्रमानुसार भगवान् की भक्ति की।

हिरण समय पर आया। भक्ति रस में विभोर हुआ और जाते समय एक रत्न उगलकर जाने लगा। सेठ छिपकर सब कुछ देख रहा था। हिरण को रत्न उगलते देख उसके ऊपर धन का भूत सवार हो गया। उसने सोचा इस हिरण के पेट में अनगिनत रत्न हैं। क्या भरोसा यह कल से आये न आये। अतः इसके पेट के सारे रत्न निकाल लेना चाहिए। इसी इरादे से उसने अपना निशाना साधा। पत्नी ने उसे ऐसा करने से मना किया पर उस पर तो धन का भूत सवार था उसने पत्नी की एक न सुनी और अपना तीर हिरण पर चला दिया। पत्नी सामने आ गई। वह तीर उसे लगा और वह वहीं पर ढेर हो गई। धन के दीवाने सेठ ने पत्नी की ओर देखे बिना उस हिरण का पीछा किया और उसे मार गिराया। उसने हिरण के पेट को चीर कर देखा, पर उसे एक भी रत्न नहीं मिला। उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। इधर पत्नी के प्राण पखेरू उड़ चुके थे। अब वह रत्नों के भण्डार में पहुँचा तो देखता है, वहाँ सारे रत्न कोयले के रूप में परिणत हो चुके हैं। इसे वह सहन नहीं कर सका और वहीं गिरकर अचेत हो गया। धन के पीछे उसे अपनी प्राण प्यारी पत्नी को खोना पड़ा, देवता सम उपकारी उस हिरण को मार डाला और सारा धन भी विनष्ट हो गया। धन की दीवानगी क्या नहीं कराती।

''को हि दरिद्रो? यस्य तृष्णा विशाला'' गरीब वही है जिसके अन्दर तृष्णा है।

जीवन दर्पण सा हो-
स्वागत सभी का
संग्रह किसी का नहीं।

चक्कर लोभ और लाभ का

एक सेठ जी थे। अत्यन्त लोभी थे। अपने वयस्क लड़कों को भी तिजोरी केश की चाबी नहीं सौंपते थे। ब्याज-बट्टे का धन्धा करते थे, उसमें उधारी बहुत चलती थी। एक बार सेठ जी बीमार हो गये, मरणासन्न दशा थी, मन में दुकान के उन्हीं ग्राहकों के नाम की रटन थी, जिनसे रुपये लेने थे। पिता का अन्तिम समय निकट जानकर पुत्रों ने सोचा, अगर पिता को अन्तिम समय में राम का नाम याद दिलाया जाए और ये उसे रटें, तो उनकी गति सुधर जायेगी। अतः बड़े पुत्र ने कहा- ''पिताजी जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं है, राम का नाम लीजिए।'' सेठ जी तपाक से बोले- ''अच्छा याद दिलाया बेटा, रामप्रसाद चौधरी से 10,000 रुपये लेने हैं। छह महीने से उसने एक पैसा भी नहीं दिया। उससे ब्याज सहित रकम वसूल लेना।'' पुत्रों ने देखा यह तो उल्टा हुआ। उन्हें राम के बदले रामप्रसाद ग्राहक का नाम याद आ गया। अतः छोटे बेटे ने उनसे 'भगवान्' का नाम लेने को कहा, मगर 'भगवान्' का नाम जिह्वा से लिया कैसे जाता? उस पर तो जिनसे धन लेना था, उन ग्राहकों के नाम चढ़े हुए थे। अतः सेठ जी बोले- ''बेटा! भगवानदास पण्डित से तकादा करके रकम वसूल करना।'' आखिर धन की रटन कितनी सार्थक है? क्या जीवन पर्यन्त धन संग्रहित करने के बाद भी मनुष्य को सन्तुष्टि मिल सकती है। मनुष्य जितना अधिक धन कमाता है, उसके अन्दर की लालसा उतनी ही बढ़ती जाती है।

अपना जीवन फूलों सा बनायें,
जो कांटो से घिरे रहने पर भी
खिला रहता है।

भीतर के पत्थरों को फेंको

शिष्य गुरु के चरणों में वर्षों से साधनारत था। एक लम्बी कालावधि बीत जाने के बाद भी उसकी साधना सिद्धि तक नहीं पहुँच सकी। एक दिन उसने अपनी पीड़ा को गुरु चरणों में प्रकट करते हुए कहा- ''गुरुदेव! आपके श्री चरणों में साधना करते हुए एक अर्सा बीत गया है। आपने कहा था कि मैं तुम्हें परमात्मा से साक्षात्कार कराऊँगा। एक लम्बा अरसा बीत जाने के बाद भी मुझे अब तक परमात्मा का कोई आभास नहीं हुआ। क्या आपके श्री चरणों में साधना करने के बाद भी मुझे सिद्धि से वंचित रहना पड़ेगा।''

शिष्य की प्रार्थना को सुनकर गुरु मुस्कुरा उठे। उन्होंने शिष्य से कहा- ''चलो, आज मैं तुम्हें परमात्मा से साक्षात्कार करवाता हूँ।'' गुरु ने शिष्य को कुछ पत्थर पकड़ाते हुए सामने की पहाड़ी पर चलने का इशारा किया और कहा- ''ऊपर चलो, वहीं पर मैं तुम्हें परमात्मा का रहस्य बताऊँगा। लेकिन ये पत्थर साथ लेकर आना।'' पहाड़ी काफी ऊँची थी। शिष्य को पत्थरों का बोझ लेकर ऊपर चढ़ना बड़ा मुश्किल लग रहा था। उसने सोचा कहीं इन पत्थरों के चक्कर में मुझे बिलम्ब न हो जाए, अन्यथा आज फिर परमात्मा के रहस्य जानने का मौका हाथ से निकल जाएगा। यह सोचकर उसने अपने सिर से एक-एक पत्थर उतारकर फेंकना शुरू कर दिया। पत्थरों का वजन कम होते ही उसे ऊपर चढ़ने में असानी हो गयी। वह फुर्ती से ऊपर चढ़ा। गुरु उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

शिष्य को खाली हाथ आया देखकर गुरु ने उससे पूछा- ''कि वे पत्थर कहाँ छोड़ आये?'' शिष्य ने कहा कि- ''गुरुदेव! उन पत्थरों के कारण तो ऊपर चढ़ना ही मुश्किल था। मैंने उन्हें बोझ जानकर नीचे ही फेंक दिया। अन्यथा मैं परमात्मा के रहस्य को जानने से वंचित रह जाता।'' गुरु ने शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहा- ''वत्स! मात्र बाहर के पत्थर फेंकने से काम नहीं चलेगा, बाहर के बोझ के साथ-साथ भीतर का बोझ भी उतारना जरूरी है।'' जब तक चित्त पर काम, क्रोध, लोभ और मोह के पत्थरों का बोझ है, तब तक चेतना का ऊर्ध्वारोहरण सम्भव नहीं है। चेतना के ऊर्ध्वारोहरण के लिए बाहर और भीतर से हल्का होना जरूरी है।

मेरा घर

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने बड़ी सार्थक बात लिखी है- एक बार मेरा एक धनिक के घर से गुजरना हुआ। धनिक ने अपना घर दिखाया। मकान बड़ा आकर्षक था। बड़े बाग, बड़े ठाट। सब कुछ दिखाकर उसने पूछा- कैसा लगा मेरा घर। मैंने सहजता से कहा- बहुत अच्छा।

पर तभी मुझे लगा कि मकान मुस्करा रहा है और इस मुस्कुराहट में मिठास नहीं है, व्यंग्य है।

मैंने धीरे से पूछा- ''क्यों भाई, तुम क्यों हँसे?''

उसने कहा- ''यूँ ही, तुम्हारे मित्र की बात सुनकर हँसी आ गई।''

उसमे हँसने की क्या बात है?

हँसने की क्या बात है! हूँ, अरे भाई उसमें हँसने के सिवाय और क्या बात है? तो फिर? कहता है मेरा घर पसन्द आया।

तो फिर क्या! ''मेरा घर! मेरा घर! यही बात इसका बाप कहा करता था और यही बात उसका बाप। दोनों जाने अब कहाँ गये। दोनों की तस्वीरें जरूर मेरी दीवारों पर टंगी हैं। जिन्हें छोटे से छेद में रहने वाली हजारों दीमकों में से एक नन्ही सी दीमक कुछ पलों में चाट सकती है।''

मैंने सहमे से उसकी तरफ देखा। वह अब भी मुस्करा रहा था।

इससे पहले की अर्थी उठे
जीवन के परम अर्थ को
समझ लो।

कोई नहीं है अपना

एक सन्त एकत्व भावना पर प्रवचन कर रहे थे- ''संसार के सारे सम्बन्ध स्वार्थ पर टिके हैं। यथार्थ में कोई किसी का नहीं है।'' एक धनिक को यह बात नागवार गुजरी। उसने सन्त से कहा- ''आप लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। आपका कोई नहीं होगा, मेरे तो सब हैं। मुझे तो मेरे परिवार में सब बहुत चाहते हैं। मेरे बिना परिवार का कोई काम नहीं होता।'' सन्त तो सन्त थे, बोले- ''हो सकता है मेरी अवधारणा गलत हो। तुम कहते हो तुम्हारे सब हैं, क्या तुम्हें पूरा विश्वास है?''

वह बोला- ''हाँ! मुझे पूरा विश्वास है।''

सन्त बोले- ''कौन-कौन हैं तुम्हारे परिवार में? सबके तुम आत्मीय हो?'' युवक ने कहा- ''मेरे माता-पिता हैं, चार भाई हैं, पत्नी है। सभी मुझे प्राणों से अधिक चाहते हैं। उनकी आत्मीयता में मुझे रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं है।'' सन्त ने कहा- ठीक है, मैं तुम्हें एक प्रयोग बताता हूँ, इससे सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा। युवक घर आया और अस्वस्थता का प्रदर्शन करता हुआ अचेत हो गिर पड़ा। घर के सारे सदस्य घबड़ा गये। सबने अपनी शक्तिभर उपचार करने का प्रयास किया। रोग किसी की समझ में नहीं आ रहा था। डॉक्टर, वैद्यों के उपचार से कोई लाभ नहीं हुआ। उसकी श्वास बन्द हो गई। परिवार के सब लोग विलाप करने लगे। उसी समय वे सन्त उधर से निकले। वे एक महान् सिद्ध सन्त के रूप में विख्यात थे। परिवार के लोग उनके चरणों में गिर पड़े। प्रार्थना करने लगे- ''महात्मन्! आप तो सिद्ध योगी हैं। हमारा लाडला प्राणों से प्यारा, मृतप्राय पड़ा है। कृपा करें, उसके प्राणों की रक्षा करें।'' सन्त उनके साथ आये। युवक को देख गम्भीर हुए, फिर कहा- अभी प्राण शेष हैं। यह बच जायेगा। एक गिलास में पानी मँगवाया। कुछ मन्त्र पढ़ा और कहा- ''आप में से कोई यदि इस जल को पी ले तो यह जीवित हो उठेगा।'' सब प्रसन्न हो कहने लगे-''लाओ, मैं पी लूँ।'' सन्त ने कहा- ''जो यह पानी पीयेगा, उसके प्राण चले जायेंगे।'' अभी तक उस जल को पीने को उत्सुक सबके चेहरे मुरझा गये। अब कोई आगे नहीं आ रहा

था। सन्त ने युवक की माँ से कहा- ''माता जी आप कह रही थीं यह आपके कलेजे का टुकड़ा है, इसके बिना जीना दूभर हो जायेगा, वैसे भी आपने जीवन में बहुत कुछ देख लिया है। अतः आप यह जल पी लो, आपका बेटा जीवित हो जायेगा।'' माँ बोली- ''वो सब तो ठीक है, मुझे इससे बहुत लगाव भी है, पर क्या करूँ, ये एक चला गया, बाकी चार तो हैं।'' माँ ने इंकार कर दिया। तो सन्त ने पिता की ओर इशारा किया। पिता बोले- ''जब उसकी माँ ही तैयार नहीं है तो मैं क्या करूँ, पिता ने भी इंकार कर दिया। सन्त ने युवक की पत्नी से कहा- ''तुम कहती थीं, ये तुम्हें प्राणों से भी प्यारे हैं इनके वियोग में क्या जीना। वैसे भी पति के अभाव में पत्नी का जीवन अधूरा होता है। अतः इसे पी लो, इससे आपके पति को नया जीवन मिलेगा।'' पत्नी ने भी इंकार कर दिया। भाईयों ने भी मना कर दिया। सब सन्त से कहने लगे, आपका आगे पीछे कोई नहीं है आप ही पी लो। सन्त ने पानी पी लिया, युवक उठकर खड़ा हो गया। सन्त निकल पड़े। वह युवक भी उनके पीछे चल पड़ा। सारे परिवार के लोग फिर माया ममता दिखाने लगे, उसे रोकने लगे। उसने कहा- ''मुझे ज्ञान हो गया है, मुझे कहाँ जाना है। अब मैं अपने घर जा रहा हूँ। अभी तक घर नहीं जंजाल में था।'' वह सन्त के चरणों में गया और सन्त का ही हो गया।

माँ-बाप को दो स्थितियों में बड़ा भारी कष्ट होता है - बेटी घर छोड़े तब और बेटा मुख मोडे तब।

कल्पवृक्ष सम जीवन

एक व्यक्ति एक भयानक जंगल में भटक गया, वहाँ सूखे-ही-सूखे पेड़ थे, कहीं कोई छाया नहीं दिखती थी। काफी दूर पर उसे एक हरा-भरा पेड़ दिखा। जैसे-तैसे शक्ति बटोरकर उस पेड़ की छाया में वह पहुँचा। पहुँचते ही उसे अपूर्व शान्ति की अनुभूति हुई। बहुत राहत मिली। पर तभी ख्याल आया, कि प्यास के मारे कण्ठ सूखा जा रहा है। कहीं पानी का प्रबन्ध नहीं है। काश, पीने के लिये पानी और मिल जाता तो तसल्ली होती। इतना सोचना ही था कि उसके सामने शीतल पेय आ गया। उसने शीतल पेय पिया, गले को तर किया, शान्ति बढ़ने की अनुभूति हुई। कुछ समय बाद उसे भूख सताने लगी, उसने मन में सोचा-कि यदि कुछ भोजन की भी व्यवस्था हो जाती, तो बड़ा आनन्द आता। सोचना था कि उसके सामने भोजन से भरे थाल आ गये। उसने छककर खाया।

जैसा कि अक्सर होता है, खाने के बाद आराम की आदत होती है, उसने सोचा-भोजन तो मैंने कर लिया, अब कुछ आराम की व्यवस्था भी हो जाती तो बहुत अच्छा होता। जैसे ही उसने उक्त बात सोची वहाँ सेज बिछ गई, वह उस पर लेट गया। लेटा ही था कि उसके मन में आया-भयानक जंगल है, सांझ ढलने को है, कहीं रात न हो जाये, इतना सोचना था, कि रात होने लगी। सोचा कि- रात हो रही है, कहीं शेर न आ जाये। देखा तो सामने से शेर आता हुआ दिखाई पड़ा। शेर आ रहा है, वह मुझे खा न जाये। जैसा सोचा था, शेर ने उसे खा लिया। उस व्यक्ति की मूर्खता पर आप सबको बड़ी हंसी आ रही होगी। कहानी यहीं खत्म होती है। पर तथ्य यहीं से शुरू होता है। ये कहानी उस एक व्यक्ति की नहीं है, हम सबकी है। वह पेड़ कोई साधारण पेड़ नहीं था, कल्पवृक्ष था, जिसके विषय में वह व्यक्ति नहीं जानता था। कल्पवृक्ष के विषय में यह कहा जाता है कि वहाँ मनुष्य के मन में जैसी कामना होती है, वह सब कुछ पा जाता है। वह कल्पवृक्ष के नीचे था, पर उसे पता नहीं था इसलिये उसने अपने मन की लोलुप कल्पनाओं और कामनाओं के कारण अपने जीवन को ही गँवा दिया।

''लोमड़ी ने दी शिक्षा''

गौतम बुद्ध एक बार अपनी साधना से हताश हो गये। उन्हें लगा कि इतने वर्षों की साधना का कोई फल नहीं मिल रहा है। यही सोचकर वापस अपने महल की ओर मुड़ गये। आत्मसाधना के उद्देश्य से जो घर त्याग चुके थे, वह भी राजमहल की ओर वापस लौटने लगे। अचानक एक सरोवर को देखकर उन्हें पानी पीने की इच्छा हुई, वे पानी पीने की भावना से सरोवर के तट तक पहुँचे। पानी पीकर आगे बढ़ने ही वाले थे कि देखते हैं कि एक लोमड़ी अपनी पूँछ को बार-बार सरोवर में डुबाती और बाहर आकर झटकारती है। बार-बार पूँछ डुबा रही है और बाहर आकर झटकार रही है। बुद्ध को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आखिर यह लोमड़ी कर क्या रही है? वे लोमड़ी के पास पहुँचे और पूछा-तुम क्या कर रही हो? लोमड़ी ने कहा- पिछले बरसात में इस तालाब ने मेरे तीन बच्चों को लील लिया था, अब मैं तालाब से बदला लेना चाहती हूँ, उसे सुखा कर छोड़ूँगी। बुद्ध हँसे और उन्होंने लोमड़ी से कहा कि एक बड़ा काम तुमने बिना सोचे-समझे शुरू कर दिया है, क्या तुम इस तालाब को सुखा पाओगी? तुम्हारी पूँछ में पानी के कितने बूँद आते हैं, तुम्हें पता है? क्या तुम यह कार्य कर सकोगी? लोमड़ी ने जो जवाब दिया, उसने बुद्ध की दिशा को परिवर्तित कर दिया।

लोमड़ी ने बुद्ध की तरफ देखते हुए दृढ़ विश्वास के साथ उत्तर दिया- तालाब कब सूखेगा, मुझे पता नहीं है और न मैंने इस तरफ ध्यान ही दिया है। मैं अपने कार्य में ईमानदारी और दृढ़ता से लगी हुई हूँ। मेहनत करना और अपने लक्ष्यकी प्राप्ति के मार्ग में कठिनाईयों के होते हुए भी कार्य करते जाना ही मेरा कर्त्तव्य है, जो मैं करती रहूँगी।

इस उत्तर ने बुद्ध की दिशा बदल दी। उन्होंने सोचा कि एक छोटा-सा जन्तु साधनहीन होकर भी अपने लक्ष्य-प्राप्ति के लिए इतनी दृढ़तापूर्वक प्रयत्नशील हो सकता है तो मैं तो मानव हूँ। मेरे पास उत्तम सोच मन और मस्तिष्क है। मैं मेरे लक्ष्य में सफल क्यों नहीं हो सकूँगा? यह सोचकर बुद्ध वापस लौट गये और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

''भावात्मक दृष्टि हो''

दो पड़ोसी थे, एक व्यक्ति सारी जिंदगी शिकायतें करते-करते जीता रहा। कभी उसके पास जाओ, वह कोई-न-कोई शिकायत प्रकट कर देता। सदा किसी चीज की कमी बतलाता रहता था। हर समय असंतुष्ट रहता था इसलिये उसका नाम था- 'रूदन्त जी आँसूवाल।' दूसरा पड़ोसी हर हाल में मस्त रहता था। जिंदगी हँसता हुआ व्यतीत कर रहा था। अन्य लोगों को भी हँसाया करता था। जो उसके पास आते थे, प्रसन्न होकर लौटते थे। उसके पास आते ही सारे दुःख और गम भूल जाते थे। इसलिये उनका नाम पड़ा था- 'हसंत जी दिलखुश'। रूदन्त जी आँसूवाल और हसंत जी दिलखुश एक-दूसरे के पड़ोसी थे, पर दोनों के स्वभाव में जमीन-आसमान का फर्क था। रूदन्तजी के पास जाओ तो कहते- क्या बतायें,आज नींद अच्छी नहीं आई। आज ग्राहकी अच्छी नहीं चली। आज भोजन में नमक थोड़ा कम था। आज ठंडा भोजन करना पड़ा। आज पत्नी ने जल्दबाजी में अच्छा खाना नहीं बनाया। क्या करूँ आज सुबह से बेटा बहुत नाराज था, रोता रहा उसे समझाना पड़ा। आज क्या कहूँ, पेट साफ नहीं हुआ। कुछ न कुछ रोना वह रोता रहा। नतीजा यह निकला कि कोई उसके पास जाना पसन्द नहीं करता। लेकिन हसंत जी दिलखुश बड़े दिलखुश थे, जिंदादिल थे। उनके पास जब कभी कोई पहुँचता तो वे बड़ी प्रसन्नता भरे अंदाज में बात किया करते थे। लोगों को संतुष्टि होती थी। सब लोग उनके व्यवहार से बड़े प्रभावित हो आनन्दित होते। जब लोग उनके पास जाते तो उनकी बातें सुनकर लोगों का सारा दुःख और गम दूर हो जाता, नया जीवन जीने की एक अच्छी प्रेरणा उनके मन में होती। बुझे हुए दिल में भी एक उत्साह जाग्रत हो जाता था। रूदंत जी हसंत जी की इस कामयाबी को देखकर मन ही मन जला-कुढ़ा करते थे। लोगों से कहते थे- यह कोई मन्त्र-तन्त्र करता है, जादूगरी करता है और लोगों को अपने पास खींचकर आकर्षित कर लेता है। यह आदमी बड़ा बेईमान है, मक्कार है, धूर्त है, चाटुकार है। रूदंत जी उनकी स्थिति को देख-देख खुद को जलाते रहे। हसंत जी अपनी स्थिति से संतुष्ट रहकर हंसते और सारे परिवेश को प्रसन्न रखते। यह है जीने की पद्धति।

''नरक बना स्वर्ग''

एक सेठ की सबसे छोटी बेटी की शादी हुई। उसे लाड़-प्यार कुछ अधिक मिल गया था इसलिए वह बहुत ढीट, जिद्दी और उच्छृंखल बन गई थी। अहं और उत्तेजना उसकी हर क्रिया में टपकती थी। गृह कार्यों में भी उसकी दक्षता नहीं थी। ससुराल में आते ही अशान्ति छा गई। वह किसी को भी प्रभावित नहीं कर सकी। सभी की आँखों में खटकने लगी। कोई भी व्यक्ति उससे बात करना तक पसन्द नहीं करता था। वह भी ससुराल आकर तंग आ गई। उसने अपने पिता को पत्र लिखकर भाई को बुलवा लिया। जो जीवन पर्यन्त ससुराल में रहने की भावना से आई थी, वह कुछ ही दिनों में अपने पिता के घर वापस जाने की तैयारी में जुट गई। भाई उसे लिवाने के लिए आ गया और वह ससुराल में सबसे लड़-झगड़कर अपने मायके चली गई। रास्ते भर भाई से ससुराल की बुराई करती रही। घर पहुँची। पिता से मिलते ही रोने लगी। कुछ समय बीतने पर पिता पुत्री के बीच बातचीत हुई वह इस प्रकार है-

ससुराल कैसी लगी?
साक्षात् नरक है।
ससुर कैसे हैं?
वह तो एकदम राक्षस हैं।
सास कैसी हैं?
लगता है पिछले जन्म की डायन होगी।
ननद कैसी है?
नम्बर एक की चुगलखोर दिन भर लड़ती रहती है।
देवर कैसा है?
एक नम्बर का आवारा, झूठा और मक्कार।
जेठ कैसा है?
जेठ तो लोभी, लालची एवं कामी है।
पति कैसा है?
वह तो स्वयं यमराज है।

पिता ने सुना थोड़ी देर के लिए उन्हें दुःख भी हुआ। पर पिता बड़े गम्भीर और अनुभवी थे। उन्होंने सोचा परिवार का हर सदस्य एक-सा नहीं हो सकता, निश्चित रूप से मेरी बेटी में ही कहीं ना कहीं कोई कमी है। सोचने लगे, इसे धैर्य से समझाना होगा। अतः कुछ ना बोले, शान्त रहे। दूसरे दिन सुबह पिता ने बेटी से कहा- बेटी तुम अगर चाहो तो मैं तुम्हें एक मन्त्र दे सकता हूँ, जिससे तुम्हारे ससुराल के सभी सदस्य तुम्हारी मुट्ठी में बँध जाऐंगे। तुम सभी को अपनी अंगुलियों के इशारे पर नचा सकोगी। लड़की को चाहिये ही क्या था, तुरन्त स्वीकृति दे दी। परन्तु पिता ने कहा- बेटी उस मन्त्र का प्रयोग इतना सरल नहीं है। उसके लिए तुम्हें कठिन साधना करनी पड़ेगी। साधना काल में क्रोध का परित्याग करना पड़ेगा। छह महीने तक तुम्हें किसी से भी कभी भी किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं करना होगा। बेटी तैयार हो गई। पिता ने सब कुछ समझा दिया।

लड़की ससुराल चली गई। सभी लोग उसे वापस आया देखकर आश्चर्यचकित थे। कोई भी उससे बात तक नहीं करना चाहता था। लड़की ने चुपचाप घर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। वह कोई भी कार्य करती गलत होता तो घर के लोग टीका-टिप्पणी करते। लेकिन वहएकदम शान्त रहती। अपनी ओर से कोई भी प्रतिक्रिया नहीं करती। दूसरे दिन ही परिवर्तन नजर आने लगा। घर के लोगों का व्यवहार बदलना शुरू हो गया। एक सप्ताह में ही काफी परिवर्तन हो गया। लड़की ने सोचा मन्त्र वास्तव में प्रभावी है। एक सप्ताह में ऐसा है, तो छह माह में तो अति आश्चर्यजनक प्रभाव प्राप्त होंगे ही। कल तक जिस बहु से कोई बात भी करना पसन्द नहीं करता था, अब वह सभी की चहेती बन गई। अब तो कोई भी काम बहु की सलाह के बिना नहीं होता था। सास ने भी घर की समस्त जिम्मेदारी बहु के हाथों में सौंप दी।

एक दिन अचानक बहु का भाई उसे लेने आ गया। कोई भी बहु को भेजना नहीं चाहता था। पर भाई के अनुरोध पर बहु को कुछ दिनों के लिए अपने मायके भेजने को तैयार हो गए।

रास्ते भर भाई से ससुराल की प्रशंसा ही करती रही। घर पहुँचने पर पिता ने

स्वागत किया। पुत्री भी हर्ष से भरी हुई थी। इस बार भी पिता-पुत्री में बातचीत हुई।

ससुराल कैसी लगी इस बार?
पिता जी ससुराल क्या है, स्वर्ग है।
ससुर कैसे हैं?
आपसे भी अधिक स्नेह देते हैं,वे तो।
सास कैसी है?
उन्होंने तो माँ की कमी का आभास भी नहीं होने दिया।
ननद कैसी है?
उनसे अच्छी सहेली मेरी कोई हो नहीं सकती।
देवर कैसा है?
मुझे माँ जैसा सम्मान देता है।
जेठ कैसे हैं?
बड़े भाई जैसे, बड़ा ध्यान रखते हैं मेरा।
मेरा दामाद कैसा है?
पिताजी वह तो साक्षात् परमेश्वर हैं।

कितना अन्तर पड़ जाता है, परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल लेने पर। नरक जैसा घर भी स्वर्ग बन जाता है। यह सब दृष्टिकोण के परिवर्तन से ही संभव है।

यदि तुम श्रवणकुमार की
माँ बनना चाहती हो तो पहले
अपने पति को श्रवण कुमार बनने दो।

''हर बात को भूलो मगर''

मुम्बई के एक धनाढ्य परिवार में घटी घटना है। रात नौ बजे अखबार पढ़ते हुए पिता को उसके डॉक्टर बने बेटे ने कह दिया- पापा, एक बात कान खोलकर सुन लो। क्या? आपको आज से ठीक तीसरे दिन सुबह नौ बजे तक घर छोड़कर चले जाना है। बेटे की बातसुनकर पिता काँप उठा। परन्तु बेटे इसका कारण क्या है? कारण कुछ नहीं, मुझे जो कहना था सो कह दिया। आपको घर छोड़ देना है। परन्तु मैं जाऊँ कहाँ? यह तो आपको सोचना है।

तेरी मम्मी गुजर चुकी है, मेरी उम्र ढल गई है। इस स्थिति में आखिर घर छोड़कर कहाँ जाऊँ। पिता ने कातरतापूर्वक कहा- बेटे ने बेरुखी से जबाव दिया- मैंने आपसे कह दिया ना, अब आपको इस घर में नहीं रहना है। बस बात यहीं खतम।

कैसी विचित्रता है? जिस पिता ने बचपन में अपने बेटे को कंधे पर बिठाकर खिलाया, बड़ा होकर बुढ़ापे में उसका ही बेटा उसे घर से निकल जाने की कह रहा है। पचहत्तर की उम्र में पहुँचा हुआ उसका वह अभागा बाप सारी रात बिस्तर पर तड़पता रहा। उसकी आँख से निकलने वाली आँसुओं की धार ने पूरा तकिया गीला कर दिया। क्याकहें, आज की पीढ़ी को जब छोटा था तब माँ-बाप के बिस्तर गीला करता था और अब बड़ा हो गया तो उनकी आँखें गीली करता है।

दूसरे दिन सुबह पिता अपने घर से निकलकर अपने एक पुराने मित्र के पास पहुँच गया। दुःखी हृदय और रोती आँखों से उसने अपने मित्र को अपने बेटे का फरमान सुनाया।

क्या सचमुच पुत्र ने ऐसा कहा है?

हाँ! कारण?

मैं नहीं जानता।

चिन्ता मत करो, अभी यहाँ आए हो तो भोजन कर लो। हम दोनों साथ में ही जाएँगे।

परन्तु कहाँ?

तुम्हारे घर।

मेरे घर, क्या करोगे?

जो हो देखते रहना।

करीब चार घंटे बाद पिता और उसके मित्र दोनों घर पहुँचे। रविवार होने से बेटा घर पर ही था। पिता की उपस्थिति में ही मित्र ने बेटे को बुलाया। पूछा- अपने पापा को घर छोड़ने का आदेश तूने ही दिया है?

हाँ!

कारण?

मेरे और मेरे पिता के व्यवहार में आपको दखलंदाजी करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

बेटे का यह जबाव सुनते ही पिता के मित्र ने ब्रीफकेस खोली। उसमें से एक कागज निकाला और पुत्र को थमाते हुए कहा- लो पढ़ो।

बेटा कागज पढ़कर स्तब्ध रह गया।

क्या यह सच है?

हाँ!

इतना सुनते ही बेटा अपने पिता के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा- पापा मुझे माफ कर दीजिए। अपनी पत्नी की बातों में आकर मैंने आपको घर छोड़कर जाने का आर्डर दे दिया। मुझे घोर दुःख और पश्चाताप है इसका। मुझे जो भी सजा देनी हो दीजिए, पर पापा, मुझे माफ कर दीजिए। बेटा फूट-फूटकर रोने लगा।

वह कागज था अस्पताल के सर्टिफिकेट का। उसमें लिखा था कि उसके पिता ने स्वयं की इच्छा से अपनी किडनी निकालने की सम्मति दी है। बेटे को पहली बार पता चला कि उसके पिता सिर्फ, एक किडनी पर ही अपना जीवन बिता रहे हैं। परन्तु ऐसा क्यो? - पल भर का भी विलम्ब किए बिना उसने अपने पिता से पूछा। पिता जबाव देने की स्थिति में नहीं थे, पिता के मित्र ने ही जबाव दिया- बेटे उन दिनों तेरे पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और तुझे पढ़ाने के लिए पैसों की जरूरत थी। तेरा पढ़ाई का प्रबल आग्रह था और तू मेडिकल लाईन में जाना चाहता था। तेरे पापा की भी तुझे डाक्टर बनाने की दिली तमन्ना थी।

खूब विचार करके तेरे पिता ने तेरे भविष्य को उज्ज्वल बनाने की भावना से अपनी किडनी निकलवाकर जो पैसा मिला, उससे तुझे पढ़ाना निश्चित किया।इसमें आगे बढ़ने से पहले उन्होंने मुझसे सलाह ली। मैं तो सुनकर स्तब्धरह गया। पुत्र की पढ़ाई के लिए स्वयं के जीवन से ऐसा खिलवाड़। परन्तु तुम्हारे पापा दृढ़ थे। दु:खी मन से मैंने अपनी सम्मति दे दी और प्रसन्न मन से अस्पताल में भर्ती होकर तेरे पिता ने अपनी एक किडनी निकलवा दी। पिता की इसी कुर्बानी के बल पर आज तू डॉक्टर बन पाया है। ये है माता-पिता का त्याग।

चिता के जलने से पहले
अपने चेतना को जगा लो।

राजा हरसुख राय की निरिहता

वे दिन थे जब हमारे पूर्वज लक्ष्मी की आराधना न करके उस पर शासन करते थे। नेकी कर कुएँ में फेंकने वाले ऐसे-ऐसे महापुरुष हुए है जिनमें एक थे- देहली के राजा हरसुखराय जिन्होंने दिल्ली के धर्मपुरा स्थित लाल मन्दिर का निर्माण करवाया। घटना 1807 की है, मन्दिर की लागत लगभग 8 लाख आँकी गयी तथा सात वर्ष में कार्य पूर्ण हो जायेगा। एक दिन लोगो ने देखा सम्पूर्ण कार्य हो चुका है मात्र शिखर एवं सीढ़ियों का थोड़ा सा काम बाकी है पर काम बन्द कर दिया गया और जो राजा साहब सर्दी-गर्मी वर्षा में वहाँ खड़े रहकर काम कराया करते थे। आज वे वहाँ पर नहीं है। लोगों ने बिना सोचे-विचारें उन पर फबकियाँ कसी परन्तु जिनका धर्म के प्रति स्नेह था उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया और राजा साहब से बोले- आपके होते हुए जिन मंन्दिर का कार्य अधूरा रहे यह तो हमारे भाग्य का ही दोष है। हरसुख राय जी ने कहा- आप तो मेरी ही बिरादरी के है आपसे क्या छुपाऊँ मेरी पूँजी खत्म हो गयी अब सोचता हूँ आप लोगो से चन्दा कर लूँ। इतना कहना था अशर्फियो के ढेर लग गये। राजा साहब ने कहा-इतने धन की जरूरत नहीं बहुत थोड़ा ही चाहिए पर प्रत्येक घर से लूंगा। जब मन्दिर पूर्ण बन गया कलशारोहण हेतु लोगो ने कहा राजा साहब मन्दिर आपने बनवाया है आप कलशारोहण करें। राजा जी वे कहा गलत बात मन्दिर समाज का है अतः पंचायत ही कलशारोहण करें। अब उन्हें थोड़ी सी पूंजी हेतु चंदा इकट्ठा करने का रहस्य समझ में आया। आज भी यह विशाल जिनमन्दिर अपने गौरव का बखान कर रहा है।

विपत्ति में धैर्य रखना
धर्मात्मा की पहचान है।

पाँच वर्ष का राज

एक राज्य में नये राजा का चुनाव होना था किन्तु उस राज्य में राजा के निर्वाचन की अलग ही प्रक्रिया थी। वह यह थी कि राज्य का हाथी जिस भी व्यक्ति के गले में माला ड़ाल देगा वही राजा होगा किन्तु पाँच वर्ष बाद राज्य की सीमा से लगी नदी जो मगरमच्छ एवं घड़ियालो से भरी है उसमें छोड़ दिया जायेगा। अब वह तैरकर उस पार जा सकता है इस पार नहीं आ सकता है। इस कानून को सुनकर उस राज्य का कोई भी व्यक्ति राजा नहीं बनना चाहता था। जिस दिन राजा का चुनाव होना था उसी दिन दूसरे राज्य का एक व्यक्ति आया हुआ था, हाथी ने उसके गले में माला डाल दी वह बड़ा खुश था पर तभी राज्य के वजीर ने वहाँ का कानून पढ़कर सुनाया। आपको पाँच वर्ष का राज्य मिला हूँ उसके बाद राज्य से लगी नदी जो मगरमच्छ एवं घड़ियालो से युक्त है उसमें छोड़ दिये जाओगे। अब आप नदी के उस पार ही जा सकते है इस पार आपको कोई स्थान नहीं मिलेगा। राजा बहुत दयावान एवं नीतिवान था। 5 वर्ष तक उसने बहुत अच्छा राज किया न केवल राज्य पर ही राज किया अपितु जनता के दिलो पर भी राज किया। हर व्यक्ति का वह चहेता बन गया। कोई भी उस राजा को खोना नहीं चाहते थे पर क्या करें सभी कानून से बंधे थे। ठीक पाँच वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर पूरी जनता ने राजा को अश्रुपूरित नेत्रों से विदाई दी। नदी किनारे लाया गया और कहा गया अब आप इस राज्य की सीमा में नहीं रह सकते उस पार जा सकते हो। पर वहाँ का वातावरण देख सभी आश्चर्यचकित थे। इन पाँच वर्षों में राजा ने नदी पर एक सुन्दर पुल का निर्माण कर लिया था और उस पार एक सुन्दर नगर बसा दिया था। राजा हाथी पर से उतर कर पैदल चलकर उस पार चला गया और बोला अब मेरे लिए इस पार और उस पार में कोई अन्तर नहीं हैं। सभी मनुष्यों की यही कहानी है उसे जो जीवन मिला है वह 5 वर्ष के राज के समान मिला है। इन पाँच वर्षों में हमें उस पार जाने के लिए एक पुल एवं सुन्दर नगर का निर्माण कर लेना है अन्यथा नरक-निगोद की मगरमच्छ एवं घड़ियालो से भरी नदी में छोड़ दिये जाओगे जहाँ बचाने वाला कोई नहीं होगा।

कैसे चलें लौटे में नाव

शिष्य वर्षों से गुरुचरणों में साधनारत था पर उसे सिद्धि की उपलब्धि नहीं हुयी। एक दिन शिष्य ने गुरु से कहा- गुरुदेव आप जैसी ध्यान की उपलब्धि मुझे क्यों नहीं हो रही? गुरुदेव ने कहा तुम्हारे प्रश्न का जवाब मैं बाद में दूँगा जाओ पहले नदी से एक लौटा जल लेकर आओ। शिष्य नदी से एक लौटा जल लेकर आया। गुरुजी ने कहा अब इसमें नाव चलाओ। शिष्य ने कहा- गुरुदेव नाव तो नदी में चलती है लौटे में नाव कैसे चलेगी? गुरुजी ने कहा- क्यों जो पानी नदी में है वह पानी इस लौटे में है फिर नाव क्यों नहीं चलेगी? शिष्य समझ गया। गुरुदेव ने शिष्य को संबोधित करते हुए कहा वत्स्- तुमने अपने चारों और अज्ञान की दीवारें खड़ी कर रखी है उन्हें हटाकर अपने ज्ञान को विशाल बना लो तभी उस ध्यान की सिद्धि होती है। आज सभी लोग लौटे में नाव चलाने का गलत प्रयास कर रहे है अपने व्यक्तित्व एवं ज्ञान को विशाल बनाइये।

अहं की खूंटी पर ही
अशान्ति टंगती है।